MEGHRAJ JAIN & CO.

(INDENDING AGENT)

RATANDEEP BUILDING
2nd FLOOR, A. T. ROAD
GUWAHATI

SYAMACHARAN ROAD
TEZPUR-784 001
PHONE : 1056

-OUR PRINCIPALS-

M/s.PRASHANTH AGARBATHI PRODUCTS,BANGALORE
M/s.SESHAMOHAN AGARBATHI FACTORY,BANGALORE
M/s.SRI RATHNAM AGARBATHI COMPANY,BANGALORE

श्री श्वेताम्बर

साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

हीरक जयन्ती महोत्सव

स्मारिका

प्रकाशक

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था
द्वारा सतीदास सुन्दरलाल तातेड़
दस्सानियों का चौक, बीकानेर-334001

जुगराज सेठिया
अध्यक्ष

सुन्दरलाल तातेड़
मन्त्री

खेमचन्द सेठिया
संयोजक

सम्पादक
देवकुमार जैन
उदय नागौरी

□

हीरक जयन्ती समारोह संयोजक समिति
संयोजक
श्री खेमचन्द सेठिया

सदस्य
श्री केशरीचन्द सेठिया
श्री उत्तमचन्द लोढ़ा
श्री प्रकाशचन्द पारख
श्री सुमतिलाल वांठिया

□

विमोचन एवं लोकार्पण
6 जनवरी 1991

□

आवरण एवं सज्जा
अमित भारती

□

मुद्रक
सांखला प्रिंटर्स, सुगन निवास
बीकानेर-334001

वन्दना

□

गुणभवण–गहण सुयरयण–भरिय, दंसण–विसुद्ध–रत्थागा ।
संघ–नगर ! भद्दं ते, अखंड–चरित्त–पागारा ।।
संजम–तव तुम्बारयस्स, नमो सम्मत्त–पारियल्लस्स ।
अप्पडिचक्कस्स जओ, होउ सया संघ–चक्कस्स ।।

—नन्दी सूत्र

卐

अर्हन्तो ज्ञान–भाजः सुखर महिता, सिद्धि–सौधस्थ–सिद्धाः ।
पंचाचार प्रवीणाः प्रगुण गुणधराः, पाठकाश्चगमानाम् ।।
लोके लोकेश–वन्द्याः, सकल यतिवराः साधु–धर्माभिलीनाः ।
पंचा अप्येते सदाप्ताः विदधतु कुशलं, विघ्न–नाशं विधाय ।।

—मंगल–सूत्र

卐

गगन–मंडल मुक्ति–पदवी, सर्व–ऊर्ध्व–निवासनं ।
ज्ञान–ज्योति अनन्त राजे, नमो सिद्ध निरंजनं ।।
अज्ञाननिद्रा विगत–वेदन, दलित–मोह निरायुषं ।
नाम–गोत्र–निरंतरायं, नमो सिद्ध निरंजनं ।।

—सिद्ध–स्तुति

卐

संपूजकानां प्रतिपालकानां
यतीन्द्र सामान्य तपोधनानाम् ।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः
करोतु शान्तिं भगवानञ्जिनेन्द्रः ।।

सरदारमल क[illegible]

[illegible]
श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन स[illegible]
18 - डी, सुकियस [illegible]
कलकत्ता–700 [illegible]

शुभ सन्देश

यह संस्था अभाव ग्रस्तों की सहायता करने में निरन्तर अग्रणी रही है। अपनी मूक सेवा एवं [illegible]हयोग[illegible] कारण ही यह अत्यन्त लोकप्रिय बनी है।

संस्थाओं की रीढ़ उसके कार्यकर्त्ता होते हैं जो अपनी निस्वार्थ सेवा, साधना एवं सहयोग से उसकी [illegible] में सहायक होते हैं। आप सबकी सक्रियता एवं अध्यवसाय ने इस संस्था को निरन्तर आगे बढ़ाया है। इसके [illegible] कार्यकर्त्ताओं को मैं अपना हार्दिक साधुवाद देता हूँ एवं विश्वास करता हूँ कि यह संस्था सेवाभावी कार्यकर्त्ताओं [illegible] प्रेरणा एवं प्रोत्साहन देगी एवं कार्यकर्त्ताओं का ऐसा दल तैयार करेगी जो इस क्षेत्र में व्याप्त अभाव की पूर्ति करे[illegible]।

इस अवसर पर प्रकाशित होने वाली स्मारिका एवं समारोह की सफलता के लिए अपनी हार्दिक शुभक[illegible] अर्पित करता हूँ।

सरदारमल [illegible]

4 दिसम्बर, 1990

रिधकरण बोथरा
मन्त्री,
श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन सभा,
18 - डी, सुकियस लेन,
कलकत्ता–700 001

शुभ सन्देश

इस सभा एवं हितकारिणी संस्था के बीच अत्यन्त मधुर सम्बन्ध रहे हैं। हितकारिणी संस्था ने प्रदर्शन एवं दिखावे से दूर रहकर समाज की जो सेवा की है, वह चिरस्मरणीय रहेगी। जिस उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर इसकी स्थापना की गई थी, उसकी पूर्ति एवं विस्तार में इसने अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है।

सभा का यह विश्वास है कि हितकारिणी संस्था के सेवाभावी कार्यकर्त्ता सेवा, स्नेह एवं सहयोग के क्षेत्र में कीर्तिमान स्थापित करेंगे जो भावी पीढ़ी के लिए प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के कारण बनेगें।

सभा आप सबको अपना साधुवाद अर्पित करती है एवं स्मारिका के लोकार्पण तथा हीरक जयन्ती के समारोह की सफलता हेतु अपने सम्पूर्ण परिवार की ओर से हार्दिक शुभकामनाएं अर्पित करती है।

4 दिसम्बर, 1990

रिधकरण बोथरा

रिखबदास भंसा
227/18, आचार्य जगदीश बोस रो
(सातवीं मंजि
कलकत्ता–700 02

शुभ सन्देश

जैन समाज की एकता की सुदृढ़ भूमिका का निर्माण कर संस्था द्वारा मूक सेवा का अभियान अत्युपयोगी सराहनीय है।

मानव मन में करुणा का विकास एवं परस्पर के सुख दुखों में सहवेदन की भावना से ही सशक्त समाज सृजन होता है।

प्रकाश्य स्मारिका सेवा की योजनाओं को एक प्रशंसनीय योगदान प्रदान करेगी। संस्था अपने उद्देश्यों पूर्ति में सफल हो यही शुभेच्छा है।

संस्था निरन्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होकर मूल उद्देश्यों की पूर्ति कर सत्कर्म का दिशा बोध दे एवं प्रदान करे यही जिनेश्वर देव से प्रार्थना है।

रिखबदास भं

5 दिसम्बर, 1990

भंवरलाल कोठरी
उपाध्यक्ष
राजस्थान गोसेवा संघ
कार्यालय – रानीबाजार,
निवास – कोठारी मोहल्ला
बीकानेर–334 001

शुभ सन्देश

परम श्रद्धेय आचार्य श्रीलाल जी म. सा. की पुण्य स्मृति में विक्रम सं. 1984 में समाज सिरोमणि प्रातः स्मरणीय श्रीयुत भैरूँदान जी सा. सेठिया, बहादुरमल जी सा. बाँठिया, सतीदास जी सा. तातेड़ आदि प्रमुख समाज सेवियों के द्वारा संस्थापित श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था बीकानेर-गंगाशहर-भीनासर के त्रिवेणी संघ का एक अग्रणी सेवा संस्थान है। 63 वर्षों की सुदीर्घ कार्यावधि में संस्था ने सीमित साधनों से स्वधर्मी सहयोग, शिक्षा प्रचार, साहित्य प्रकाशन, समता भवन संस्थापन जैसे अनेक जनोपयोगी कार्य किये हैं, जो अविस्मरणीय हैं।

समाज रत्न श्रीयुत सुन्दरलाल जी सा. तातेड़ के योग्य संचालकत्व में संस्था प्रगति पथ पर अनवरत अग्रसर है। यह लोक हितकारी संस्थान सेवा की अमर बेल बने, शुभेच्छा है।

हीरक जयन्ती के इस स्मरणीय अवसर पर मेरी मंगल कामनाएँ स्वीकारें।

भंवरलाल कोठारी

कन्हैयालाल
154 जमनालाल वजाज स्ट्रीट,
कलकत्ता–700 007

शुभ सन्देश

'श्री श्वे. साधुमार्गी हितकारिणी संस्था' बीकानेर अपने यशस्वी जीवन के बासठ वर्ष पूर्ण करके त्रेसठ वर्ष में प्रवेश कर रही है। यह जानकर अत्यन्त प्रसन्नता है कि इस उपलक्ष्य में इसकी 'हीरक-जयन्ती' का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर स्मारिका का प्रकाशन मणिकांचन या सोने में सुहागा कहा जा सकता है।

मैं इस संस्था की प्रबन्ध समिति का सदस्य विगत कई वर्षों से रहा हूँ। मैंने देखा है कि संस्था सदैव समाज सेवा के रचनात्मक कार्यों में निरंतर लगी रहकर अपने नाम में लगे 'हितकारिणी' शब्द को चरितार्थ कर रही है। कार्यकर्त्ताओं की निःस्वार्थ भावनाओं व कर्मण्यता के फलस्वरूप संस्था विकास के प्रकाश की ओर अग्रसर है। यह हम सब के लिए गर्व एवं गरिमा की बात है।

मुझे याद है कि श्री श्वे. स्था. जैन सभा कलकत्ता को जब भवन-निर्माण हेतु आर्थिक सहयोग की आवश्यकता थी। इस कार्य हेतु मैंने एक कार्यकर्त्ता के नाते अन्य स्वजनों के साथ हितकारिणी संस्था से सम्पर्क स्थापित किया था। फलस्वरूप इस संस्था ने अतिशीघ्र सभा को पचास हजार की राशि ऋण के रूप देकर अपने सेवा-भाव का प्रभाव हम सब के हृदय पर अंकित कर दिया था, जो मेरे लिए अविस्मरणीय प्रसंग है।

संस्था की हीरक-जयन्ती के अवसर पर मैं अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ व्यक्त करता हूँ। मेरा अटल विश्वास है कि इसके कार्यकर्त्ता अपने गुरुजनों के दिव्य-भाव, दिव्य अस्तित्व को हृदय में संजोए हुए, जन-सेवा के ध्वज को लेकर दिन-व-दिन गहराते अन्धकार में उजास की सुवर्ण रेखा उगाते रहें। इसी कामना के साथ।

कन्हैयालाल मालू

10 सितम्बर, 1990

सम्पादकीय

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था के हीरक जयन्ती समारोह के अवसर पर प्रकाशित इस स्मारिका के माध्यम से संस्था के विगत वर्षों का विवरण प्रस्तुत करने के अतिरिक्त सामाजिक संस्थाओं के बारे में जनमानस की प्रतिक्रिया का भी यत्किंचित् दिग्दर्शन करा रहे हैं।

सामाजिक संस्थाओं की स्थापना उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए की जाती है जिसमें समाज की विभिन्न आवश्यकताओं की आंशिक पूर्ति हो अथवा पूर्ति विषयक ऐसी प्रक्रिया प्रारम्भ हो कि कड़ी से कड़ी जुड़ने की तरह सहज रूप में स्वयं समाज निर्माण के उपादान सबल बनते जायें।

संस्था के विवरण को देखने से ऐसा प्रतीत हुआ है कि मानवीय भावनाओं का ऊर्ध्वीकरण करने, स्वधर्मी बन्धुओं को सहयोग देने, कई नवयुवकों को आत्म-निर्भर बनाने के लिए संस्था ने प्रयत्न किया है। इस प्रयत्न में अपनी स्थिति, क्षमता और मर्यादा के अनुसार योगदान दिया है। प्रबन्धक मण्डल सामूहिक उत्तरदायित्व के साथ कार्य संचालन कर रहा है।

अब प्रकाशित लेखों पर दृष्टिपात कर लें। प्रायः सभी लेखक बन्धुओं ने सामाजिक संस्थाओं की आवश्यकता बताई है। किन्तु उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि प्रायः यत्र-तत्र बिखरी संस्थाएँ निरपेक्ष जैसी होकर कार्यशील हैं और उनके रूपों में परिवर्तन हो गया है। विकृतियों का निराकरण करने एवं आचार-विचार की शुद्धता बनाए रखने के लिए जिनका उपयोग हो सकता है, उनमें आधुनिकता के नाम पर पनपने वाली बुराईयों का प्रवेश हो गया है। अतः सामाजिक संस्थाओं को आधुनिकता के नाम पर पनपने वाली बुराईयों के परिमार्जन के क्षेत्र में पहल करना चाहिये और वे ऐसा करें।

युवावर्ग से अनुरोध है कि वे प्राचीन और अर्वाचीन सभी प्रकार की सामाजिक संस्थाओं का स्व और समाज निर्माण के लिए उपयोग करें, सभ्यता की औपचारिकताओं के नाम पर प्रदर्शन से विलग होकर सांस्कृतिक परम्परा को सुदृढ़ बनायें। सामाजिक संस्थाएं भी इसी दिशा में प्रयत्नशील रहें।

अन्त में व्यक्ति और समष्टि के लिए पूज्य जवाहराचार्य के सन्देश को प्रस्तुत कर विराम लेते हैं—

तुम भारत में जन्मे हो। तुममें क्षेत्रविपाकी गुण होना स्वाभाविक है। फिर भी तुम अपने रंग-ढंग, खान-पान और पहनावे को देखो। तुम भारतीय हो पर भारतीय भाषा क्या तुम्हें प्यारी लगती है? अगर मातृभाषा तुम्हें प्रिय नहीं है तो इसे दुर्भाग्य के सिवाय और क्या कहा जाय? परदेशी लोग भारत की प्रशंसा करें और तुम भारतीय होकर भी भारत की अवहेलना करो, यह कुछ कम दुर्भाग्य की बात नहीं है। आज भारतीय अनेक लुभावनी विदेशी वस्तुओं पर मुग्ध होकर भारत को, अपनी जन्मभूमि को भूल रहे हैं, यह नहीं देख पाते कि दरअसल यह वस्तुएँ कहाँ की हैं? उनका मूल उद्गम कहाँ है? तुम्हें अपने घर का पता नहीं है।

□

—देवकुमार जैन

बीकानेर

—उदय नागोरी

संयोजकीय वक्तव्य

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर की स्थापना संवत् 1984 में परम श्रद्धेय आचार्य श्री श्रीलाल जी महाराज की पुण्य स्मृति में की गई थी। अपने सीमित कोष से संस्था गत 63 वर्षों से सामाजिक एवं धार्मिक उत्थान के लिए आवश्यकतानुसार अनेक प्रवृत्तियाँ चलाती रही है और आज भी सुचारू रूप से कार्यरत है। इसका कार्यक्षेत्र बीकानेर एवं निकटवर्ती क्षेत्र होने तथा सीमित साधनों के कारण अन्य क्षेत्रों में बहुत कम लोग ही इस संस्था से परिचित रहे हैं। यों संस्था का योगदान सुदूरवर्ती क्षेत्रों में भी रहा है।

संस्था काम में विश्वास रखती थी और आज भी उसी भावना के साथ बिना किसी प्रचार के मूक सेवा कर रही है। मैं यहां बता देना उचित समझता हूँ कि संस्था ने अपनी स्थापना के पश्चात् प्रथम बार ही अर्थ संचयन किया है और प्रचार की दृष्टि से स्मारिका प्रकाशित की जा रही है। मैं संक्षिप्त जानकारी की एक झलक ही प्रस्तुत कर रहा हूँ, पूर्ण विवरण तो मंत्री अपने प्रतिवेदन में दे ही रहे हैं।

संस्था के तीन सदस्यों ने पत्र द्वारा सुझाव दिया कि यह वर्ष संस्था की हीरक जयन्ती वर्ष के रूप में मनाया जाय। इस सुझाव पर दिनांक 13-5-90 को संस्था की जनरल कमेटी की विशेष बैठक बुलाई गई, जिसमें सर्व सम्मति से निर्णय लिया गया कि हीरक जयन्ती वर्ष मनाने के साथ-साथ संस्था के स्थायी फंड में वृद्धि की जाए ताकि भविष्य में और अधिक क्षेत्र इससे लाभान्वित हो सके। इस अवसर पर एक स्मारिका प्रकाशित कर स्थापना से अद्यावधि पर्यन्त संस्था की प्रवृत्तियों का विवरण प्रस्तुत करने का भी निर्णय किया गया।

हीरक जयन्ती समारोह के कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए उसी समय एक संयोजकीय समिति का गठन किया। मुझे संयोजक पद दिया गया। मैं यह गुरुत्तर कार्य करने में कई कारणों से संकोच कर रहा था, पर संस्था के सभी माननीय सदस्यों एवं सहयोगियों के पूर्ण सहयोग का आश्वासन देने पर मुझे यह दायित्व स्वीकार करना पड़ा। मैं इस कार्य में कहाँ तक सफल हुआ हूँ स्वयं नहीं बता सकता।

मुझे अपने निजी कार्य से कलकत्ता जाना पड़ा, वहां श्री कन्हैयालाल जी मालू एवं श्री सरदारमल जी कांकरिया से हीरक जयन्ती मनाने के सम्बन्ध में विस्तार के साथ वार्तालाप हुआ। आप दोनों ने इस निर्णय की सराहना अनुमोदन करते हुए मुझे उसी समय कोष वृद्धि के लिए अर्थ संचयन संकलन में पूर्ण सहयोग देकर मेरे उत्साह में वृद्धि कर दी। श्री मालू जी अस्वस्थता के कारण चल फिर नहीं सकते थे अतः उन्होंने जगह-जगह फोन से सम्पर्क स्थापित करके व श्री कांकरियां जी ने, जो इस संस्था से सम्बन्धित नहीं है किन्तु जनोपयोगी कार्यों में योगदान की स्वाभाविक वृत्ति होने से, हर जगह मेरे साथ चल कर आर्थिक सहयोग दिलाया, जो सभी के लिए अनुकरणीय है। आप दोनों महानुभावों का संस्था व अपनी ओर से पुनः सम्मान करते हुए सधन्यवाद आभार मानना मेरा कर्त्तव्य है।

श्री भंवरलाल जी बैद व श्री रिखबदास जी भंसाली ने भी सहयोग दिलाने में पूर्ण सहयोग दिया है, इसलिए वे भी धन्यवाद के पात्र हैं।

अपने वरिष्ठ श्री जुगराज जी सेठिया व श्री सुन्दरलाल जी तातेड़ का हार्दिक आभार मानता हूँ कि समय-समय पर आवश्यक सुझाव देकर समारोह को सफल बनाने के लिए मुझे उत्साहित किया।

संयोजक समिति के सदस्यों का भी आभारी हूँ। श्री संपतलाल जी तातेड़ ने समारोह सम्बन्धी सारा हिसाब रखा है अतः मैं उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ।

स्मारिका को पठनीय व संग्रहणीय बनाने में जिन विचारकों, विद्वानों ने योगदान दिया एतदर्थ उनका सधन्यवाद आभारी हूँ।

स्मारिका के लिए विज्ञापन संग्रह करने में श्री सुन्दरलाल जी कोठारी, मुम्बई, श्री पांचीलाल जी बोथरा, पटना, श्री शान्तिलाल जी सांड, बैंगलोर, श्री मेघराज जी पुगलिया व श्री मोहनलाल जी तातेड़, तेजपुर, श्री सोहनलाल जी गोलछा, कलकत्ता, श्री केशरीचन्द जी गेलड़ा, कलकत्ता, श्री कंवरलाल जी मालू, कलकत्ता आदि आदि ने अपना पूर्ण सहयोग दिया है। उनके योगदान का सम्मान करते हुए आभार मानता हूँ।

पारख कम्प्यूटर्स ने हीरक जयन्ती सम्बन्धित अनेक पत्र प्रारूप, लीफलेट आदि की सुन्दर छपाई की है, इसलिए धन्यवाद के पात्र हैं।

श्री देवकुमार जैन व श्री उदय नागोरी ने स्मारिका का सम्पादन किया है। दोनों के श्रम का मूल्यांकन कर धन्यवाद देना मेरा कर्त्तव्य है।

स्मारिका के आकर्षक मुद्रण के लिए सांखला प्रिण्टर्स के सभी कार्यकर्त्ताओं एवं सुन्दर साज सज्जा के सहयोगी श्री अमित भारती धन्यवाद के पात्र हैं।

मैंने स्मारिका हेतु लेखों एवं सूक्तियों का संकलन कर अन्दर के डिजाइन व कवर पृष्ठ का डिजाइन आदि तैयार कर सामग्री कार्यालय में प्रेषित कर दी थी।

जहां तक मेरी स्मृति में है मैंने सबको धन्यवाद दे दिया है पर मानव से भूल हो जाना स्वाभाविक है। यदि किसी का नाम भूल से रह गया हो, जिसने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में श्रम दिया है, मैं अपनी भूल महसूस करते हुए उन सब को भी धन्यवाद देता हूँ।

स्मारिका के प्रकाशन में शाब्दिक शुद्धि का ध्यान रखा गया है फिर भी क्वचित त्रुटि रह गई हो तो क्षम्य मानकर पाठकवृन्द हमारे श्रम का मूल्यांकन कर अपने मन्तव्य से अवगत कराने की कृपा करें।

इसी आशा और विश्वास के साथ—

□

खेमचन्द सेठिया
संयोजक
श्री श्वे. सा. जैन हि. संस्था
हीरक जयन्ती समारोह

बीकानेर वुलन प्रेस
इन्डस्ट्रीयल एरिया
रानी बाजार
बीकानेर–334 001

जीवनी

पूज्य आचार्य श्री श्रीलालजी म. : व्यक्तित्व कृतित्व

दृष्टेः सदा स्रवति यस्य सुधासमूहो,
यस्यार्द्रशुद्धहृदयात् करुणाप्रपूरः ।
यस्यानने वहति सौम्यनदीप्रवाहः,
श्रीलालजिन्मुनिवरं तमहं नमामि ॥

उत्कृष्ट चरित्र सम्पन्न महामहिम महात्मा जगत के लिये आशीर्वाद रूप हैं। वे अपने सदेह विद्यमान जीवन से जगत को कर्तव्य का बोध कराते हैं और ऐहिक देहातीत स्थिति में जीवन-कथा द्वारा प्रजा को प्रगति का प्राथेय प्रदान करते हैं। उससे जन साधारण को गुण ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त होती है। स्वयं का तुलनात्मक अध्ययन करने की प्रेरणा मिलती है। जैसे भगवान् महावीर का जीवन चरित्र पढ़ने से आत्मा की अनन्त शक्तियों का भान होता है। श्री रामचन्द्रजी का जीवनवृत्त मर्यादा पुरुषोत्तम वनने का पथ प्रदर्शित करता है। भीष्म पितामह के वृतान्त से ब्रह्मचर्य की महिमा समझ में आती है। महाराणा प्रताप की जीवनी से अटूट धैर्य, अदम्य उत्साह, प्रतिज्ञापालन की अपूर्व निष्ठा की शिक्षा प्राप्त होती है।

इसीलिये इन पृष्ठों में प्रवल वैराग्य, तपश्चर्या, निश्चल मनोवृत्ति, अनुपम सहनशीलता आदि उत्तमोत्तम सद्गुणों से जीवन के परमआदर्श को प्राप्त करने के लिये अग्रसर, भव्य जीवों के हृदयों को असाधारण उत्साह से आप्लावित करने वाले, जनसामान्य की तरह राजन्यवर्ग को भी अहिंसा धर्म का अनुयायी बनाने वाले उन पूज्य श्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज की जीवनगाथा उपस्थित करते हैं, जिन्होंने श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा रूपी ध्रुवतारे का अवलम्वन लेकर निःश्रेयस् की संसिद्धि के लिये प्रस्थान किया था।

जन्म एवं बाल्यावस्था

पूज्य प्रवर श्रीलालजी म. के व्यक्तित्व कृतित्व का आलेखन वर्तमान के धरातल पर करेंगे। क्योंकि अतीत सामान्य बुद्धि के लिये अगम्य है, तो अनागत अदृश्य। वर्तमान ज्ञात है, उसकी प्रत्येक वृत्ति, प्रवृत्ति सदियों तक प्रभावित करती है।

वर्तमान की आद्य इकाई जन्म है और जन्म का अर्थ 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरेशयनं' नहीं, किन्तु 'असतो मा सद्गमय, मृत्योर्मा अमृतंगमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय' का सूत्र है।

पूज्य श्री जी का जन्म इसी सूत्र की व्याख्या है। यद्यपि जन्म लेने पर इनके साथ माता, पिता, काका, वावा, मामा, मामी, भाई, बहिन आदि-आदि के रूप में लौकिक नाते-रिश्ते जुड़ गये थे। इनके लाड़-प्यार-दुलार के बीच अपने ऐहिक जीवन का श्रीगणेश किया। लेकिन इतनों तक ही स्वयं को सीमित नहीं किया, 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को साकार कर दिया।

प्रत्येक व्यक्ति के विकास में जन्म के साथ भौगोलिक स्थिति, माता-पिता के आचार-विचारों का भी सम्बन्ध है। अतः प्रासंगिक होने से सर्वप्रथम संक्षेप में इनका उल्लेख करते हैं।

पूज्य आचार्य श्री श्रीलालजी म. : व्यक्तित्व कृतित्व

दृष्टेः सदा स्रवति यस्य सुधासमूहो,
यस्यार्द्रशुद्धहृदयात् करुणाप्रपूरः ।
यस्यानने वहति सौम्यनदीप्रवाहः,
श्रीलालजिन्मुनिवरं तमहं नमामि ।।

उत्कृष्ट चरित्र सम्पन्न महामहिम महात्मा जगत के लिये आशीर्वाद रूप हैं। वे अपने सदेह विद्यमान जीवन से जगत को कर्तव्य का वोध कराते हैं और ऐहिक देहातीत स्थिति में जीवन-कथा द्वारा प्रजा को प्रगति का प्राथेय प्रदान करते हैं। उससे जन साधारण को गुण ग्रहण करने की योग्यता प्राप्त होती है। स्वयं का तुलनात्मक अध्ययन करने की प्रेरणा मिलती है। जैसे भगवान् महावीर का जीवन चरित्र पढ़ने से आत्मा की अनन्त शक्तियों का भान होता है। श्री रामचन्द्रजी का जीवनवृत्त मर्यादा पुरुषोत्तम वनने का पथ प्रदर्शित करता है। भीष्म पितामह के वृतान्त से ब्रह्मचर्य की महिमा समझ में आती है। महाराणा प्रताप की जीवनी से अटूट धैर्य, अदम्य उत्साह, प्रतिज्ञापालन की अपूर्व निष्ठा की शिक्षा प्राप्त होती है।

इसीलिये इन पृष्ठों में प्रवल वैराग्य, तपश्चर्या, निश्चल मनोवृत्ति, अनुपम सहनशीलता आदि उत्तमोत्तम सद्गुणों से जीवन के परमआदर्श को प्राप्त करने के लिये अग्रसर, भव्य जीवों के हृदयों को असाधारण उत्साह से आप्लावित करने वाले, जनसामान्य की तरह राजन्यवर्ग को भी अहिंसा धर्म का अनुयायी वनाने वाले उन पूज्य श्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज की जीवनगाथा उपस्थित करते हैं, जिन्होंने श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा रूपी ध्रुवतारे का अवलम्वन लेकर निःश्रेयस् की संसिद्धि के लिये प्रस्थान किया था।

जन्म एवं वाल्यावस्था

पूज्य प्रवर श्रीलालजी म. के व्यक्तित्व कृतित्व का आलेखन वर्तमान के धरातल पर करेंगे। क्योंकि अतीत सामान्य वुद्धि के लिये अगम्य है, तो अनागत अदृश्य। वर्तमान ज्ञात है, उसकी प्रत्येक वृत्ति, प्रवृत्ति सदियों तक प्रभावित करती है।

वर्तमान की आद्य इकाई जन्म है और जन्म का अर्थ 'पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरेशयनं' नहीं, किन्तु 'असतो मा सद्गमय, मृत्योर्मा अमृतंगमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय' का सूत्र है।

पूज्य श्री जी का जन्म इसी सूत्र की व्याख्या है। यद्यपि जन्म लेने पर उनके साथ माता, पिता, काका, वावा, मामा, मामी, भाई, वहिन आदि-आदि के रूप में लौकिक नाते-रिश्ते जुड़ गये थे। उनके लाड़-प्यार-दुलार के वीच अपने ऐहिक जीवन का श्रीगणेश किया। लेकिन इतनों तक ही स्वयं को सीमित नहीं किया, 'वसुधैव कुटुम्वकम्' को साकार कर दिया।

प्रत्येक व्यक्ति के विकास में जन्म के साथ भौगोलिक स्थिति, माता-पिता के आचार-विचारों का भी सम्बन्ध है। अतः प्रासंगिक होने में सर्वप्रथम संक्षेप में इनका उल्लेख करते हैं।

वैसे तो भारतभूमि का प्रत्येक ग्राम, नगर, प्रदेश, प्रान्त अपनी अनूठी विशेषताएं संजोये हुए है, लेकिन उनमें भी राजस्थान का गौरवशाली इतिहास है। उसके कण-कण में वीरों की विरुदावलियां गर्भित है। धर्म-वीरों, दानवीरों, रणवीरों आदि-आदि वीरों को जन्म देने का सौभाग्य इसी प्रान्त ने प्राप्त किया है।

इसी राजस्थान की पूर्व दिशा में टोंक नामक राज्य था, जो चारों ओर पहाड़ियों से घिरा है और दक्षिण में बनास नदी बहती है। यहां के निवासी परिश्रमी हैं, अपनी आन-बान-शान के लिये सर्वस्व समर्पित करने वाले हैं। यहां बम्बगोत्रीय ओसवाल जाति के श्री चुन्नीलाल जी नामक एक सद्गृहस्थ रहते थे। राज्य एवं समाज में प्रतिष्ठा थी। सद्गृहस्थ के समस्त सद्गुणों से अलंकृत थे। तत्कालीन व्यवस्था के अनुसार साहूकारी, लेन-देन का व्यवसाय करते थे और अपनी साख के कारण राज्य व फौज के खजांची भी थे।

सेठ श्री चुन्नीलाल जी की तरह उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सौभाग्यवती चांदकुंवर वाई भी थीं। प्रतिदिन सामायिक, प्रतिक्रमण करना, जरूरतमन्दों को दान देना, तपश्चर्या करना आदि दैनिक चर्या के अंग थे।

इन निर्मल हृदया से मांगीवाई नामक एक पुत्री और नाथूलालजी नामक एक पुत्र का जन्म होने के वाद वि. सं. 1926, आषाढ कृष्णा 12 को एक पुत्र का जन्म हुआ था।

साधारण जनों को पुत्रजन्म आह्लादनीय होता है। लेकिन जब गर्भावस्था में रहते हुए ही कतिपय विशेषताओं का आभास हो जाता है तब उनकी प्रसन्नता का पारावार ही नहीं रहता। मातुश्री चांदकुंवर वाई को गर्भावस्था में अनुभूत अनेक विशेषताओं से यह विश्वास हो गया था कि मेरा भावी प्रसव अलौकिक होगा और जन्म के होने पर तेजस्विता, भव्याकृति, विशाल भाल आदि शारीरिक लक्षणों से यह निश्चय कर लिया था कि यह वालक महान् पुरुष वनेगा।

माता-पिता ने जन्म-सम्वन्धी लौकिक रीति-रिवाजों को सम्पन्न करने के वाद पूर्व की विशेषताओं को ध्यान में रखकर वालक का नामकरण 'श्रीलाल' किया।

वालक श्रीलाल ने माता-पिता के लाड़-प्यार की उर्जा के साथ शैशवावस्था विताई और जव पांच वर्ष के हो गये तव समान वय वालों के साथ खेलते कूदते। वालसुलभ क्रीड़ा के रूप में उन्हें प्रिय था श्रमण जैसी चर्या का अनुसरण करना। इस समय वे कपड़े का टुकड़ा लेकर साधुओं जैसी झोली वनाते, मिट्टी की कुलड़ियों से पात्र वनाते, मुख-वस्त्रिका वांधते, हाथ में शास्त्र की तरह कागज का पन्ना लेकर व्याख्यान वांचने जैसी प्रवृत्ति करते। ऐसे प्रसंगों को देख कर कुछ लोग तो हंसते और कतिपय व्यक्ति भावी का अनुमान लगाकर कहते कि चुन्नीलालजी का यह कुलदीपक विश्व मानव का मार्ग दर्शक वनेगा।

माता-पिता वालक श्री जी को समझाते 'वेटा ऐसा करने से साधु सन्तों की अविनय होती है। वे अपने पूज्य हैं, हमें उन जैसा स्वांग करना योग्य नहीं है।' माता-पिता के इस सीख भरे आदेश को मानकर वैसा करना तो उन्होंने छोड़ दिया, किन्तु साधु-संतों के दर्शन, व्याख्यान श्रवण करने के लिये उपाश्रय अवश्य जाते। ध्यान-पूर्वक व्याख्यान सुनते और अपनी समझ के अनुसार सारांश ग्रहण करते। कभी-कभी माता से व्याख्यान में सुनी वातों के वारे में पूछते।

छह वर्ष की अवस्था होने पर श्री जी को व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करने के लिये विद्यालय में भेजा गया। हिन्दी पढ़ने के लिये पं. मूलचन्दजी की पाठशाला में भर्ती कराया और उर्दू की शिक्षा के लिये हाजी

अब्दुलकरीम के मदरसे में भेजा। कुशाग्रबुद्धि और लगन से अपने सहाध्यायियों में श्रीलालजी प्रथम स्थान प्राप्त करते थे। आपकी स्मरणशक्ति इतनी प्रबल थी कि गुरुमुख से जो सुनते, उसे उसी रूप में सुना देते थे। जिससे शिक्षकों को बड़ा आश्चर्य होता था।

स्मरण शक्ति और प्रतिभा की बदौलत दस वर्ष के होने तक श्री जी हिन्दी, उर्दू के अच्छे जानकार हो गये थे तथा महाजनी लेखा आदि व सामान्य धार्मिक आचार-विचारों का ज्ञान माता-पिता से प्राप्त किया था।

मानसिक की तरह श्रीलाल जी का शारीरिक संहनन भी सुदृढ़ था। सहनशीलता, निर्भयता, दृढ़-विश्वास इत्यादि उनके स्वाभाविक गुण थे। परन्तु प्रकृति अतीव सरल व कोमल थी। किसी के प्रति शत्रुता का भाव न था। संक्षेप में कहा जाये तो श्री जी का जीवनादर्श यह था—

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे,
दीन दुखी जीवों पर मेरे मन में करुणा स्रोत बहे।
दुर्जन क्रूर कुमार्गरतों पर क्षोभ नहीं मुझको आवे,
साम्यभाव रखूं मैं उन पर ऐसी परिणति हो जावे॥

जीवनादर्श का यह संक्षिप्त रूप उत्तरोत्तर विकसित होता गया। परिणामतः वे कभी दुःख से दबे नहीं, दिग्मूढ़ नहीं बने, उदासीनता से दुबले नहीं हुए। आत्मा की भूख मिटाने के लिये अविश्रान्त श्रम किया। पाप भीरूता उनके रग-रग में व्याप्त थी। गुणीजनों का सम्मान करने का जितना ध्यान रखते थे उतने ही अन्याय का निराकरण करने के लिये कटिबद्ध रहते थे। लोकनिन्दा या अपनों को सन्तुष्ट करने की चिन्ता से दूर रहकर शास्त्राज्ञा को धर्म माना।

'पूत के लक्खन पालने में' उक्ति को ध्यान में रखकर ही यहां श्री जी की कुछ एक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है।

राग की वीणा विराग के स्वर

प्रत्येक सद्गृहस्थ की यह चाह होती है कि उसका घर-आंगन पुत्र वधू के नूपुरों की झंकारों से गूंजे। श्रीजी के माता-पिता ने भी इस चाहना की पूर्ति के लिये वि. सं. 1932 भाद्रपद शुक्ला 5 को जयपुर राज्य के दूनी ग्राम निवासी श्री बालाबक्सजी की सुपुत्री मानकुंवरबाई के साथ श्रीजी का सम्बन्ध निश्चित कर दिया। इस समय श्रीजी की उम्र 6 वर्ष की और मानकंवरबाई की उम्र 4 वर्ष की थी।

श्रीजी को सद्गृहस्थ बनाने की दिशा में माता-पिता का यह पहला कदम था। लेकिन विधि का विधान कुछ और ही आयोजना की तैयारी में था। वि. सं. 1935 में श्रीजी ने अपना व्यावहारिक शिक्षण पूर्ण कर लिया था। व्यापार-व्यवसाय के क्षेत्र में प्रवेश कराने के लिये पिताजी दुकान का कार्य समझाते थे। श्रीजी को व्यापार क्षेत्र में प्रवेश करते कुछ समय ही हुआ था कि वि.सं. 1936 आषाढ़ मास में सेठ चुन्नीलालजी का स्वर्गवास हो गया।

पिताजी तो अपनी साध लिये परलोकवासी हो गये थे। लेकिन बड़े भाई श्री नाथूलालजी ने पिताजी की जिम्मेवारी का निर्वाह करते हुए वि. सं. 1936 मिगसर कृष्णा 2 को श्री जी का विवाह कर दिया। इस

समय उन्होंने अपनी उम्र के 10 वर्ष पूरे कर 11वें वर्ष में प्रवेश किया था और मानकुंवरबाई का 9 वां वर्ष लगा था।

वर राजा जब विवाह करने के लिये बारातियों के साथ टोंक से दूनी आये, तब इसी समय विधि का विधान कहूं अथवा भावी का अदृश्य आकर्षण कि श्रीजी के परोपकारी धर्मगुरु तपस्वी श्री पन्नालालजी जी म., श्री गम्भीरमलजी म. भी ग्रामानुग्राम विहार करते हुए दूनी पधार गये थे। गुरुदेव के पदार्पण का संवाद सुनकर वर-राजा गुरुजी के दर्शनार्थ उपाश्रय में आये।

विवाह सम्पन्न होने के पश्चात् वर राजा सहित बारात वापस टोंक लौट आई थी। लेकिन गौना होने के पूर्व वधू का पतिगृह में प्रवेश नहीं होने की लोकरीति के अनुसार मानकुंवर बाई तीन वर्ष तक पितागृह में ही रहीं।

श्री जी ने सद्गृहस्थ कहलाने का लबादा अवश्य ओढ लिया था, किन्तु अन्तर्नाद कुछ दूसरा ही राग गुनगुनाता रहता था। श्रीजी को लौकिक जीवन के प्रति कुछ भी आकर्षण नहीं था। उनका अधिकांश समय ज्ञानाभ्यास, संतसमागम और धर्मध्यान में बीतता था। माता, बड़े भाई आदि सभी कुटुम्बी उनकी इस प्रवृत्ति से खेदखिन्न होते। वे व्यापार-व्यवसाय में लगाने का प्रयत्न करते लेकिन श्रीजी तो राग की वीणा पर विराग के स्वर सुनने में ही आनन्दानुभव करते थे।

अरमान अधूरे रह गये

पितृपक्ष के शुभाशीर्वादों के साथ मन में रंग-रंग के अरमानों को संजोये श्रीमती मानकुंवरबाई ने पतिगृह में प्रथम प्रवेश किया। इस समय उनकी उम्र 12-13 वर्ष की थी।

पुत्रवधू के आगमन से सासूजी का हृदय आनन्द से छलक उठा। श्री चुन्नीलालजी के देहावसान से उदासीन उनके मन में आज कुछ संतोष का अनुभव हुआ था और पुत्रवधू के विनयादि गुणों को देखकर विरागी पुत्र को रागी बनाने की आशा बांधने लगीं। लेकिन यह सब भविष्य के गर्भ में था कि कितने अंश में उनकी आशा सफल होती है, या होती ही नहीं।

श्रीमती मानकुंवरबाई को पतिगृह में आये कुछ दिन ही हुए थे, किन्तु इस अल्प समय में ही अपने विनयादि गुणों एवं कर्त्तव्यपरायणता से पारिवारिक जनों के बीच सम्मान योग्य स्थान बना लिया था। सब उनकी प्रशंसा करते थे। लेकिन वे स्वयं 'जल बिन मीन उदासी' की तरह पति की वैराग्यवृति से अन्तर्द्वन्द्व में डूबी रहती थीं। सौम्य मुख मंडल पर उदासी की परछाई झलकती रहती थी और विचारों में डूबी रहतीं कि पति के मन को कैसे प्रसन्न करूं, कैसे उनकी प्रीतिपात्र बनूं।

'विनय वशीकरण मंत्र है' यह आपको आते ही सासूजी ने सिखा दिया था। इसलिये वे हर समय विनय, भक्ति द्वारा पति का मन प्रसन्न करने का प्रयत्न करती थीं। किन्तु श्रीजी को पत्नी से दूर रहना ही पसन्द था। कभी-कभार वे पहाड़ियों पर चले जाते, वहां चिन्तन में ऐसे डूब जाते कि समय का भी भान नहीं रहता था।

पत्नी को 'आशा बलवती राजन' का सहारा था तो
काम-भोग प्यारा लगे फल किंपाक समान।
मीठी खाज खुजावतां पीछे दुख की खान॥

के अनुयायी विरागी पति रात्रि में उपाश्रय या दूसरी हवेली में संवर करके सोते, दिन अध्ययन-मनन करने में विताते ।

एक दिन श्रीजी अपनी तिमंजिली हवेली की चांदनी में वैठे जम्बू स्वामी की चौपई पढ़ रहे थे कि इतने में ही मानकुंवरवाई पास में आकर खड़ी हो गई तव श्रीजी ने नीचे नयन कर मौन धारण कर लिया ।

एकान्त में स्त्री से वार्तालाप करना आदि ब्रह्मचारी के लिये अनिष्टकारी ओर अकलपनीय है । अतः श्रीजी ने वहां से निकलना चाहा और जैसे ही चांदनी के दूसरे भाग में जाने के लिये डग आगे वढ़ाया तो मानकुंवरवाई ने हाथ पकड़ने का प्रयास किया । किन्तु प्रतिज्ञा भंग होने की आशंका से श्रीजी पश्चिम द्वार की दूसरी दो मंजिली हवेली की चांदनी पर कूद पड़े ।

इस दृश्य को देखकर मानकुंवरवाई घवरा गई और रोते-कलपते नीचे आकर सारी घटना सासूजी को कह सुनाई ।।

इस प्रकार कूदने से श्रीजी के पांव में सख्त चोट आई । नस पर नस चढ़ गई थी । उपचार करने से पैर तो ठीक हो गया किन्तु पूरा आराम नहीं हुआ और यावज्जीवन पीड़ा वनी रही । यह घटना वि.सं. 1940 की है । इस समय श्रीजी की उम्र 15 वर्ष की थी किन्तु कदकाठी से 18 वर्ष जैसे दिखते थे ।

मनोमंथन

अपने साथ घटे प्रसंग से श्रीजी का मन उद्वेलित हो गया । विचार-तरंगों और अन्तर्द्वन्दों से अभिभूत होकर वे एक दिन अपनी प्रिय रसिया टेकरी पर जा पहुंचे । वहां वैठकर विचार करने लगे— 'माता-पिता ने भावी जीवन सुखमय वनाने की दृष्टि से मेरा विवाह किया, एक निर्दोष छोटी वालवय की सुकुमार कन्या का हाथ पकड़ा । उसे अपनी भावनायें कैसे समझाऊं । कुटुम्वीजन समझाते हैं कि उसका अव विगाड़ना पाप है । मुझे संसार त्यागते उसे महान् कष्ट होगा यह मैं जानता हूं, परन्तु क्या एक व्यक्ति के लिये अनन्त पुण्योदय से प्राप्त और अनन्तानन्त भवों के भ्रमण से मुक्त कराने में समर्थ यह मनुष्य भव मुझे हार जाना चाहिये ? क्या काम भोग रूपी कीचमें इस देव दुर्लभ मनुष्य भव को फंसा देना चाहिये ? यह शरीर, यौवन स्त्री और संसार के सब वैभव विलीन होने वाले हैं । इन सवके लिये मैं अपनी अविनाशी आत्मा का हित नहीं विगड़ने दूंगा । मानकुंवरवाई के लिये मेरे मन में रोष नहीं है, क्रोध नहीं है किन्तु दया है, अनुकम्पा है । अतः चाहूंगा कि वह भी प्राप्त मानव भव का सदुपयोग कर परमात्मपद प्राप्ति के लिये प्रवृत्त हो । 'समयं गोयम मा पमायए' को अपना जीवनादर्श वनाये ।' यह और इसी प्रकार के दूसरे विचार मन में आये । अंत में यह निश्चय किया कि अव विषयों का परित्याग करके पूर्ण ब्रह्मचर्य के पथ पर अग्रसर होऊंगा, तप करूंगा शुद्ध सच्चिदानन्द की ज्योति अपनी आत्मा में प्रगटाऊंगा और तीर्थंकर भगवन्तों का पुण्य स्मरण करके आत्मसाक्षी पूर्वक श्रीजी ने मनसा-वाचा-कर्मणा विशुद्ध ब्रह्मचर्य धर्म अंगीकार करने की प्रतिज्ञा की ओर नये उत्साह, नये तेज से अपने अंतर को प्रकाशित करते हुए घर लौट आये ।

आत्म निवेदन

श्री जी का शारीरिक स्वास्थ्य तो औषधोपचार से सुधर रहा था और आज के निश्चय से उनके मानसिक स्वास्थ्य में आशातीत परिवर्तन आ गया । घर आते ही मातुश्री को प्रणाम किया, भाई को वंदन किया और छोटे वड़े सभी पारिवारिक जनों के साथ आलाप-संलाप किया ।

बहुत दिनों के बाद श्रीजी के इस बदले व्यवहार से सभी आश्चर्य चकित थे, सभी खुश थे और उन्होंने मान लिया कि सुबह का भूला शाम घर लौट आया है।

वातावरण में अन्तर आने पर भी श्रीजी की चर्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। अब वे विशेष रूप से संयम साधना के मार्ग पर चलने की तैयारी में जुट गये। पूर्ण रूप से जब अपने आपको परख लिया, तब एक दिन मातुश्री से विनम्र निवेदन किया— 'मां ! मुझे दीक्षा की अनुमति दीजिये। दीक्षा के योग्य मैंने तैयारी कर ली है। आप आज्ञा देकर कृतार्थ कीजिये।'

मातुश्री इन विचारों को पहले भी सुन चुकी थीं। लेकिन आज पुनः उन्हीं विचारों को सुनकर उनकी आंखों में आंसू भर आये और रुंधे स्वर में बोलीं—क्या गृहस्थी में रहते धर्म ध्यान नहीं हो सकता? हम तो चार दिन के मेहमान हैं, लेकिन इस बिचारी का तो कुछ ध्यान रख। फिर भी तुझे दीक्षा लेना है तो मेरा कहा मान-कर थोड़ा समय गृहस्थी में बिता। आज तेरे पिताजी होते तो.... कहते-कहते मातुश्री की आंखों से झर-झर आंसू बह निकले और उनका सारा शरीर पसीने से भर गया।

दृश्य कारुणिक था। श्रीजी ने इसे मोह की माया मानते हुए कहा— आप अपने विचारों से ठीक ही कहती होओ, लेकिन अब मैं इस जंजाल से छुटकारा चाहता हूं।

श्रीजी के निश्चय की खबर जब भाई नाथूलालजी को व काका हीरालालजी को मिली तो वे भागे-भागे घर आये। मातुश्री को रोते-कलपते और श्रीजी को मौन खड़े देखकर काकाजी रोष में भर बोले—खबरदार ! जो आज से तूने दीक्षा का नाम लिया। अपनी ये बचकानी हरकतें छोड़।

अब श्रीजी पर विशेष निगरानी रखी जाने लगी।

उद्देश्य पूर्ति के लिये विशेष प्रयत्न

यद्यपि प्रतिबन्ध लग जाने से श्रीजी की स्थिति कैदी जैसी हो गई थी, फिर भी वे अवसर देखकर अपने नगर में विराजित साधु-सन्तों की सेवा में पहुंच ही जाते थे।

एक दिन श्रीजी को मालूम हुआ कि परम प्रतापी पूज्य श्री उदयसागरजी म. इन दिनों रतलाम विराज रहे हैं। यह संवाद सुना तो उन्होंने दर्शनार्थ जाने का निश्चय कर लिया। बड़े भाई, काका आदि ने दर्शनार्थ जाने की आज्ञा नहीं दी तो मौका देखकर टोंक से जयपुर होते हुए रतलाम पहुंचे और पूज्यश्री के दर्शन, प्रवचन श्रवण कर हर्षित हुए।

श्रीजी के अकस्मात चले जाने से परिवार आकुल व्याकुल हो गया। लेकिन कुछ अनुमान-सा लगाकर दूसरे दिन श्री नाथूलालजी भी रतलाम पहुंचे। पूज्यश्री के दर्शन किये और श्रीजी के भी यहां आने की ख़बर सुनने से सन्तुष्ट हुए।

श्री नाथूलालजी ने अपनी मनोव्यथा पूज्यश्री को सुनाई। पूज्यश्री ने सान्त्वना देते हुए फरमाया— आपके भाई का नाम श्रीलाल अवश्य है, लेकिन देखा जाये तो वह श्रीधर है। मेरा अनुमान है कि आपका यह कुलदीपक जगदीपक होगा।

अपने छोटे भाई के लिये पूज्यश्री के मुख से यह भाव सुनकर श्री नाथूलालजी प्रसन्न हुए, किन्तु यह भी अहसास हो गया कि श्रीजी अब घर में रहने वाले नहीं हैं।

इसी वार्तालाप के वीच श्रीजी आचार्यश्री के दर्शनार्थ आये और उन्हें वंदन करके वड़े भाई को प्रणाम किया। श्रीजी को देखकर श्री नाथूलालजी ने उनके सिर पर हाथ फिराया और गद्गद् कंठ से वोले—हम तुम्हारे हितैपी हैं, हमारी स्थिति पर भी तो कुछ विचार करो। श्रीजी ने भाई के भावों को सुनने के वाद अंत में कहा—क्या आज ही मुझे टोंक चलना पड़ेगा। कुछ दिन पूज्यश्री की सेवा नहीं करने दोगे ?

श्री नाथूलालजी ने माताजी की स्थिति को वताते हुए टोंक चलने के लिये समझाया तो श्रीजी ने उसी समय चलने की तैयारी कर ली और साथ ही यह वचन मांग लिया कि घर तो चलता हूं किन्तु अव वाहर की हवेली में अकेला रहूंगा। भाई ने आपकी वात मंजूर की और वापस टोंक आ गये।

अव श्रीजी की विशेष ज्ञानाभ्यास करने की लालसा वढ़ती जा रही थी, किन्तु अन्य कोई उपाय न देखकर निश्चय किया कि ज्ञानाभ्यास के योग्य साधनों को ध्यान में रखकर मुझे किसी दूर देश में पहुंचना चाहिये और विना कुछ कहे-सुने एक दिन टोंक से जयपुर आकर काठियावाड़ की ओर प्रस्थान कर दिया। काठियावाड़ कच्छ आदि आदि क्षेत्रों में होते हुए मुनि श्री चौथमलजी म. के पास ज्ञानाभ्यास करने के विचार से मेवाड़ लौट आये। इतने दिनों तक अपनी कुशलता या जानकारी का कोई पत्र घर वालों को नहीं दिया था।

वहुत समय के वाद भी जव श्रीजी का कुछ अता-पता नहीं मिला तो मातुश्री ने श्री नाथूलालजी से कहा—श्रीलाल का पता नहीं लगा, कहकर तू घर में चुपचाप वैठा है। वह कहां भटकता होगा। उसका पता लगा।' मां की मनोवेदना सुनकर श्री नाथूलालजी का हृदय भर आया और दुखी होकर पुनः खोजने के लिये निकल पड़े। नागौर आने पर टोंक से श्री लक्ष्मीचन्दजी का पत्र मिला कि श्रीजी नाथद्वारा में मुनिश्री चौथमलजी म. के पास है। उनको लाने के लिये मैं नाथद्वारा जा रहा हूं।

श्री लक्ष्मीचन्दजी के साथ श्रीजी टोंक तो आ गये किन्तु अव देख-रेख की व्यवस्था और कड़ी कर दी गई। जव कभी अवसर मिलता तो श्रीजी माताजी से आज्ञा के लिये आग्रह करते। माताजी मन में समझती थीं कि श्री अव घर में रहने वाला नहीं है। किन्तु सेठ श्री हीरालालजी की इच्छा के प्रतिकूल कुछ कहने का साहस नहीं कर पाती थीं।

दिनोंदिन श्रीजी की आकुलता वढ़ती जा रही थी। मन में सोचते कि प्रवल अन्तरायकर्म का उदय है, इसीलिये दीक्षा के लिये आज्ञा नहीं मिल रही है।

सरदी का समय था। कड़ाके की सरदी पड़ रही थी। एक दिन शौचादि से निवृत्ति के मिस श्रीजी हवेली से नीचे उतरे और एक चादर लेकर सुवह के धुंधलके में चुपचाप घर से निकल पड़े। दिन भर में 22 कोस की मंजिल पार कर शाहपुरा के निकट खादेड़ा ग्राम पहुंचे। भूख-प्यास और शीत ऋतु की तीव्रता से वुखार हो गया। सौभाग्य से उसी दिन श्री नाथूलालजी के ससुर श्री शिवदासजी रुणवाल कार्यवश अपने गांव घटियाली से खादेड़ा आये थे। उन्होंने श्रीजी को देखा तो उपचार की व्यवस्था कर स्वस्थ किया और अपने साथ घटियाली ले आये। टोंक भी समाचार देने से भाई श्री नाथूलालजी घटियाली आये और समझा-वुझाकर अपने साथ टोंक ले आये।

पूरी तरह से निरोग हो जाने पर एक दिन मां ने कहा—वेटा मैं तुम्हारी भावना समझती हूं, परन्तु इस तरह चले जाने से हमें वहुत दुख होता है। मैं वैठी हूं तव तक तू घर में रह और वाद में सुखपूर्वक संयम लेना। भगवान महावीर ने भी तो माताजी को दुखी न करने के लिये उनके जीवित रहने तक संयम नहीं लिया

था। तू भी तो महावीर का अनुयायी है। इसलिये हमारी यह कामना पूरी कर दे। बड़े भाई श्री नाथूलालजी ने भी अपने मनोभाव बताये।

श्रीजी ने दोनों की भावनाओं को सुना और बहुत ही सरल शब्दों में समझाते हुए कहा—'प्रभु तो तीन ज्ञान के स्वामी थे और मुझे तो एक पल की होनी का पता नहीं। भगवान ही कह गये हैं कि समयमात्र का भी प्रमाद मत करो। इसलिये आप मुझे आत्मकल्याण के लिये अग्रसर होने दीजिये। मां! मैं आपका बेटा हूं। आपको, आपके दूध को नहीं लजाऊंगा।' ऐसा कहकर श्रीजी अपने स्थान पर लौट आये और माता व भाई अपने में कुछ सोचते से वहीं बैठे रहे।

श्रीजी के शब्दों ने पारिवारिक जनों को प्रभावित किया। उन्होंने समझ लिया कि श्रीजी प्रण से डिगने वाले नहीं हैं।

इन्हीं दिनों पूज्य श्री छगनलालजी म. का टोंक पदार्पण हुआ। उनके पास श्रीजी शास्त्राध्ययन करने लगे। परिवार की ओर से विशेष रोक-टोक न रहने से श्रीजी प्रसन्न थे। किन्तु कभी कभी उदास होकर विचारों में डूब जाते थे।

अन्तिम प्रयत्न सफल

वैराग का वेग बढ़ता जा रहा था। अतः अपनी भावना अपने जैसे विचार वाले मित्र श्री गूजरमलजी पोरवाड़ को बताई। 'मनभावे और वेद बतावे' की तरह दोनों ने योजना के सभी पहलुओं पर विचार किया और निश्चय कर टोंक को अंतिम प्रणाम कर दोनों अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े। कुटुम्बीजन भी आस-पास के क्षेत्रों में पता लगाते-लगाते रामपुरा, कोटा आदि में विराजित संतों से जानकारी करते हुए सुन्हेल पहुंचे और देखा कि दोनों साधुवेश में बैठे श्रोताओं को शास्त्र सुना रहे हैं। शास्त्र वाचन पूरा होने के बाद श्री नाथूलालजी ने श्रीजी से कहा—आप हमारे साथ टोंक चलें, वहां आप जैसा कहेंगे वैसा किया जायेगा। सुन्हेल के श्रावकों ने भी समझाया। तब श्रीजी व गूजरमलजी ने स्पष्ट शब्दों में बता दिया कि अब हम गृहस्थ वेश में तो टोंक लौटेंगे नहीं। आप हमें दीक्षा की आज्ञा दीजिये।

अपने प्रयत्न का फल न देख कुछ विचार कर श्री नाथूलालजी वापस टोंक आये और दोनों की गिरफ्तारी का वारन्ट निकलवाकर वापस सुन्हेल के सूबासाहब से मिले। सूबा साहब ने कहा कि एक बार और समझाकर कहो—सूबा साहब का हुकम है इसलिये हमारे साथ चलो। परन्तु श्रीजी नहीं माने और सुन्हेल के श्रावकों के साथ कचहरी में आये। सूबा साहब ने श्रीजी की भव्य मुखाकृति को देखकर और मन में कुछ विचार करते हुए अपनी जिम्मेदारी समझकर दोनों को टोंक जाने का हुक्म दिया कि नहीं जाने पर गिरफ्तार कर टोंक भेजा जावेगा। अब जैसी इच्छा हो बताओ।

हुकम सुनकर श्रीजी ने वहीं एक पग पर खड़े होकर सूबा साहब से कहा—'मैं यहीं खड़ा हूं। टोंक भेजना तो दूर रहा, यहां से एक डग भी आप नहीं हटा सकते। हम साधु हैं, बुलाने से नहीं आते, भेजने से नहीं जाते। बैठते हैं तो लोहे की कील की तरह और जाते हैं तो पवन-वेग की तरह। आप राजा के अमलदार हैं, परन्तु साधुओं पर हुकम चलाने या उन्हें सताने का अधिकार आपको भी नहीं है।'

यह स्पष्ट वाणी सुनकर सूबासाहब भी दिग्मूढ हो गये और राजा का हुकम तुम्हें मानना पड़ेगा कहते हुए कुछ कांपते-से अन्दर चले गये।

एक प्रहर तक श्रीजी एक पांव पर खड़े रहे। अंत में सूवा साहव ने श्री नाथूलालजी को अन्दर बुलाकर कहा—'भाई ! इन्होंने कोई गुनाह किया होता तो कुछ कर सकते थे। यह प्रतापी पुरुष अपने प्रण से डिगने वाला नहीं है। इसलिये समझा-बुझाकर ले जा सको तो ले जाओ और हमें इस झंझट से बचाओ।'

श्रीजी को बहुत देर तक एक पांव से खड़े देखकर श्रीनाथूलालजी का हृदय भर आया और भोजन के वाद वातचीत करने व आपकी भावना के अनुरूप कार्य करने का आश्वासन देकर अपने ठहरने के स्थान पर लौट आये। श्रीजी ने भी भाई के विचारों से कुछ आश्वस्त से होते हुए पांव धरती पर रखा और गूजरमलजी के साथ वापस उपाश्रय में आये।

भोजन के वाद श्री नाथूलालजी आदि श्रीजी के पास आये और घर चलने के लिये विनम्र प्रार्थना की। मां की ममता का ध्यान दिलाया, तव श्रीजी ने कहा— 'आप लोग मोह का असर कम करो। जिससे यह सव संताप मिट जाये। आप आज्ञा देंगे तो ठीक, नहीं तो इस वेश में ही देश-देश विचरेंगे।' अंत में निराश होकर श्री नाथूलालजी और श्री गूजरमलजी के भाई हरदेवजी वापस टोंक लौटे और सव हकीकत कह सुनाई।

समाचारों को सुनकर सभी ने मान लिया कि श्रीजी का टोंक लौटना अव दूर की वात हो गई है। फिर भी सभी की राय जानने के लिये श्रीनाथूलालजी ने अपने व श्री गूजरमलजी के परिवार वालों व गांव के प्रमुख सज्जनों को अपनी हवेली में एकत्रित किया और सारी हकीकत सुनाई। श्रीजी की माता ने सारी वातें सुनने के वाद कहा—'अव उसे अधिक सताना ठीक नहीं।'

श्रीजी को सुन्हेल में मुनिश्री किशनलालजी म. आदि संतों का सुयोग मिला और उन्हीं के पास अध्ययन करने लगे। वि. सं. 1944 के चातुर्मास में रामपुरा आये और वहां शास्त्रज्ञ श्रावक श्री केशरीमलजी से सूत्रों का अध्ययन करना प्रारम्भ किया।

चातुर्मास समाप्ति के वाद श्रीजी माधोपुर आये। वह श्रीजी की ननिहाल का गांव था। ननिहाल वालों को श्रीजी की स्थिति का पता था। अत: श्रीजी की भावना को अच्छी तरह परखने और सभी तरह से संतुष्ट हो जाने के वाद श्रीजी के मामा के सुपुत्र श्री लक्ष्मीचन्दजी और श्री मयाचन्दजी पोरवाड़ आदि टोंक आये। उन्होंने दीक्षा की आज्ञा देने का आग्रह किया कि अव दोनों को घर में रोके रखना अपने वश की वात नहीं रही है।

अव हमको वाधा न मानें

श्री लक्ष्मीचन्दजी आदि ने श्रीजी की मातुश्री चाँदकुंवर वाई को सव स्थिति वताई। तव मातुश्री ने कहा कि वह (श्रीजी की धर्मपत्नी मानकुंवर वाई) से पूछ लें। हमारी वजाय उसका अधिकार विशेष है। मातुश्री के वुलाने पर श्रीमती मानकुंवर वाई आई। स्थिति वताई और आज्ञा देने के वारे में राय पूछी।

श्रीमती मानकुंवरवाई ने समाचारों को सुनने के वाद विनय व धैर्यपूर्वक उत्तर दिया—'आपने उन्हें घर में रखने के जितने प्रयत्न हो सकते थे, किये। परन्तु सव निष्फल रहे। उन्हें और आप सवको तकलीफ होती है, इसलिये आप जो फरमायेंगे, शिरोधार्य करूंगी। अव हमको वाधा न मानें। उनका कार्य हमारे कुल की यशोवृद्धि का साधन वने।'

श्रीमती मानकुंवरवाई के इन विचारों को सुनकर मातुश्री का हृदय भर आया। अपने शुभाशीर्वादों सहित वरद हाथों को सिर और सर्वांग पर फेरते हुए पुत्रवधू को छाती से चिपकाकर अश्रुपान से अभिषेक करती

हुई बोलीं—'जब अर्धांगिनी ही अधिकार समर्पित करने के लिये तत्पर है, तब विराग के पथ पर बढ़ते चरणों को कौन रोक सकता है।' कुछ देर मौन रहने के बाद फिर बोलीं—'नाथूलाल ! तुम हंसी-खुशी सुने-सुने आज्ञा देने जाओ, मेरा आशीर्वाद है, श्री सुन्दर रीति से संयम पाले आत्मा का कल्याण करे और जिनमार्ग को दिपावे।'

इसी तरह श्री गुजरमलजी की माताजी व पत्नी ने अपनी स्वीकृति प्रदान की।

आर्हती प्रव्रज्या के प्रांगण में

श्री लक्ष्मीचन्दजी (श्रीजी के मामा के पुत्र) ने वापस माधोपुर आकर श्रीजी को दीक्षा की आज्ञा प्राप्ति का संवाद सुनाया। साथ ही मातुश्री की यह भावना बताई कि यदि श्रीजी परिवार की गुरु आम्नाय की सम्प्रदाय (कोटा सम्प्रदाय) में दीक्षा लें तो हमें खुशी होगी। किन्तु श्रीजी इसे आग्रह न समझें, वे अपनी गुरुनेश्राय का निर्णय करने में स्वतन्त्र हैं।

श्रीजी ने माता की भावना को सविनय स्वीकार किया और वि.सं. 1945 माघ कृष्णा 7, गुरुवार को बनेड़ा ग्राम में पूज्य श्री किशनलालजी म. से विधिपूर्वक *आर्हती प्रव्रज्या अंगीकार की।*

श्रीजी के दीक्षित होने के बाद श्री नाथूलालजी ने पूज्य श्री किशनलालजी म. से निवेदन किया कि आप श्रीजी म. सहित टोंक पधार कर हमारे परिवार व मातुश्री को दर्शन देने की अभिलाषा पूर्ण करावें।

पूज्यश्री अपने नवदीक्षित संतों के साथ टोंक पधारे और एक रात वहां रहकर झालरापाटन की ओर विहार कर दिया। इन घर आये जोगी के दर्शन कर परिवार प्रफुल्लित हो गया। श्रीमती मानकुंवरबाई का चेहरा दमक उठा और अपने में एक अनोखे उल्लास का अनुभव किया।

वि. सं. 1946 का चातुर्मास झालरापाटन हुआ। यहां धर्मप्रभावना तो खूब हुई किन्तु पूज्य श्री किशनलालजी म. का चातुर्मास के बीच स्वर्गवास हो जाने से श्रीजी म. को बहुत दुःख हुआ।

सरिता का सागर से संगम

चातुर्मास पूर्ण होने पर श्रीजी म. ने मुनिश्री बलदेवजी म. की सेवा में अपना मनोरथ निवेदन किया। श्री बलदेवजी म. के शुभाशीर्वाद के साथ श्रीजी म., श्री गूजरमलजी म. ठा. 2 रामपुरा पधारे। यहां वि. सं. 1947 के चातुर्मास में रुककर सुश्रावक श्री केशरीमलजी से अधूरे शास्त्राध्ययन को पूरा किया। तत्पश्चात् रामपुरा से विहार करके कानोड़ में विराजित पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म. की सम्प्रदाय के प्रभावक संतप्रवर श्री चौथमलजी म. की सेवा में उपस्थित हुए। दर्शन, वंदन कर अपने को कृतार्थ माना और अपने मनोभावों को श्रीचरणों में प्रस्तुत किया।

श्रीजी म. के कानोड़ पहुंचने के समाचार मिलने पर श्री नाथूलालजी टोंक से कानोड़ आये और श्रीजी म. की इच्छानुसार अपनी नेश्राय में लेने के लिये आज्ञापत्र लिख दिया।

मुनि श्री चौथमलजी म. ने श्री बलदेवजी म. की सहमति, स्थिति और पात्रता, योग्यता का मूल्यांकन कर पूज्य उदयसागरजी म. की आज्ञापूर्वक चतुर्विधसंघ की साक्षी से अपने बड़े शिष्य वृद्धिचन्दजी म. का शिष्य बनाकर श्रीजी म. को अपनी सम्प्रदाय में सम्मिलित कर लिया तथा परीक्षा करने के लिये वि.सं. 1947 के शेष काल व वि.सं. 1948 व 49, 50, 51, 52 के चातुर्मासों व विहार में साथ रखा।

इस सुदीर्घकाल तक गुरुदेव श्री का सुयोग मिलने से श्रीजी म. की संयमसाधन व ज्ञानाभ्यास में

चतुर्मुखी वृद्धि हुई। दिनों-दिन उनका विमल यश देश-देशान्तरों में विस्तृत होता गया। चतुर्विध संघ श्रीजी म. के असाधारण गुणों की मुक्तकंठ से प्रशंसा करने लगा।

स्मरणीय प्रथम स्वतन्त्र चातुर्मास

परीक्षाओं में पूर्ण रूप से उत्तीर्ण हो जाने और यशोवृद्धि से सभी श्री संघ अपने यहां श्रीजी म. के पदार्पण एवं वर्षावास में विराजने के लिये लालायित हो रहे थे। उदयपुर श्रीसंघ तो बहुत पहले से ही श्रीजी म. का चातुर्मास कराने के लिये कटिबद्ध हो चुका था और समय-समय पर अपनी भावना भी व्यक्त करता रहा।

सौभाग्य से वि.सं. 1953 का चातुर्मास होने का लाभ उदयपुर श्रीसंघ को प्राप्त हो गया। श्रीजी म. के पदार्पण से पहले ही उनकी कीर्ति वहां पहुंच चुकी थी। इसलिये नागरिकों में विशेष उत्साह था और जब स्वयं श्रीजी म. पधारे तो नगरवासियों ने अभिनन्दन किया और प्रवचनों का लाभ लिया।

साधारण प्रजा तो श्रीजी म. के प्रवचनों से प्रभावित थी ही, राजन्य वर्ग भी इससे अछूता न रहा। आस-पास के जागीरदारों ने स्वयं अपने यहां होने वाले पशुवध को बन्द करने की घोषणायें कीं। मेवाड़ राज्य के प्रधान श्री बलवन्तसिंहजी कोठारी इतने प्रभावित हुए कि अभी तक की अपनी कार्य प्रवृत्तियों का परीक्षण, निरीक्षण व प्रत्याख्यान कर जैन धर्म के अनुयायी बन गये। इस महान आदर्श को प्रस्तुत करने के लिये महाराणा साहब ने कोठारीजी की प्रशंसा की और सारे मेवाड़ में शांत क्रांति का शंखनाद गूंज गया, जिसकी ध्वनि, प्रतिध्वनि आसपास के क्षेत्रों के साथ-साथ दूर प्रान्तों में व्याप्त हो गई।

पत्नी पति की राह पर

हजारों लाखों मूक प्राणियों की शुभ कामनाओं की समृद्धि से सम्पन्न श्रीजी म. चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् उदयपुर से विहार कर आस-पास के क्षेत्रों में धर्मघोष करते हुए रतलाम पधारे। इन दिनों पूज्य उदयसागरजी म. अस्वस्थता के कारण रतलाम विराज रहे थे। युवाचार्य श्री चौथमलजी म. भी जावद चातुर्मास पूर्ण कर रतलाम पधार गये थे।

पूज्य श्री उदयसागरजी म. की अस्वस्थता आदि के समाचारों को सुनकर श्रीमती मानकुंवरबाई ने दर्शनार्थ रतलाम जाने की भावना सासूजी श्रीमती चाँदकुंवरबाई को बताई तब श्री नाथूलालजी अपने परिवार और श्रीसंघ के साथ रतलाम आये। सभी ने संतदर्शन का लाभ लिया।

श्रीमती मानकंवरबाई ने श्रीजी म. की यशोगाथाओं को पूर्व में ही सुन रखा था और अब हजारों श्रोताओं के बीच उनकी धर्मदेशना को सुनकर आत्मविभोर हो गईं, आह्लादित हुई और पूज्य आचार्य श्रीजी म. के पास एक माह से अधिक गृहस्थी में रहने का प्रत्याख्यान कर लिया। अपने प्रत्याख्यान की पूर्ति हेतु परिवार से आज्ञा लेने के लिए टोंक आईं। अपने सभी पारिवारिकजनों, माता-पिता आदि व श्रीसंघ से आज्ञा लेकर वापस रतलाम आईं। वहां वि.सं. 1954 फाल्गुन शुक्ला 5 को महासती रंगूजी महाराज की सम्प्रदाय की महासती श्री राजां जी म. के पास भागवती दीक्षा अंगीकार की।

श्रीजी म. भी इस समय रतलाम विराजते थे।

संघ व्यवस्था : प्रथम पादन्यास

वि.सं. 1954 माघ शुक्ला 10 को आचार्य श्री उदयसागरजी म. का स्वर्गवास हो जाने से युवाचार्य

श्री चौथमलजी म. आचार्य पदारूढ़ हुए। परन्तु वृद्धावस्था और नेत्रज्योति क्षीण हो जाने के कारण विहार होना सम्भव न होने से रतलाम में स्थिरावास कर लिया।

आचार्य प्रवर पहले ही श्रीजी म. की योग्यता परख चुके थे। अतः अब संघ व्यवस्था में योग देने एवं विशेष योग्यता अर्जित करने की दृष्टि से श्रीजी म. को आज्ञा दी कि शेषकाल में निकटवर्ती क्षेत्रों में विहार करते हुए चातुर्मासार्थ वापस रतलाम आ जाना। आदेशानुसार श्रीजी म. चातुर्मास के लिये रतलाम लौट आये और वि. सं. 1955, 56, 57 के तीनों चातुर्मास पूज्यश्री की सेवा में किये।

श्रीजी म. के प्रभावक व्यक्तित्व एवं वक्तृत्व से सभी श्री संघों को यह आभास हो गया था कि चतुर्विध संघ की सारणा-वारणा करने में श्रीजी म. समर्थ हैं।

आचार्य पदारोहण

वि.सं. 1957 का चातुर्मास धर्म प्रभावना के साथ सम्पन्न हो रहा था कि अकस्मात् कार्तिक मास में आचार्य श्री चौथमलजी म. व्याधिग्रस्त हो गये। उपचार करने पर भी कोई लाभ नहीं हो रहा था। कार्तिक शुक्ला 1 को रात्रि के 10, 11 बजे के करीब व्याधि ने उग्ररूप धारण कर लिया। सूचना मिलते ही रतलाम श्रीसंघ के प्रमुख श्रावक श्री अमरचन्दजी पीतलिया, श्री तेजपालजी संचेती आदि दूसरे-दूसरे श्रीसंघों के अग्रगण्य श्रावकों को साथ लेकर सेवा में उपस्थित हुए।

आचार्यश्री चौथमलजी म. की शारीरिक स्थिति चिन्तनीय होते जाने से सभी शोकाकुल हो रहे थे और भावी संघ-व्यवस्था का ध्यान आते ही उन्हें और अधिक उद्विग्न कर दिया।

इस स्थिति में भी अपने उद्वेग को दबाकर भावी संघ व्यवस्था के लिये निवेदन करने पर आचार्य श्रीजी ने फरमाया कि मेरे पश्चात् सम्प्रदाय की सार-सम्भाल श्रीलालजी म. करें। आचार्य श्रीजी के इस स्पष्ट आदेश से सभी को संतोष हुआ।

दूसरे दिन कार्तिक शुक्ला 2 के दोपहर पुनः आचार्य श्रीजी की सेवा में चतुर्विध संघ एकत्रित हुआ। इस समय सेठ श्री अमरचन्दजी पीतलिया ने आचार्य श्रीजी से निवेदन किया— 'जिन शासन रूपी आकाशमंडल में आपश्री सूर्यवत् प्रकाश कर रहे हैं और यह सूर्य चिरकाल तक प्रकाशमान रहे, यह हमारी हार्दिक भावना है। परन्तु आपका शरीर व्याधिग्रस्त हो रहा है, इसलिये सम्प्रदाय में जिन मुनिराज को आप योग्य मानते हो उन्हें युवाचार्य पद प्रदान करने की कृपा करें। ऐसी मैं उपस्थित चतुर्विध संघ एवं दूसरे दूसरे श्रीसंघों की ओर से विनम्र प्रार्थना करता हूं।' प्रत्युत्तर में पूज्य आचार्य श्रीजी ने पूर्व में व्यक्त किये भावों को पुनः दुहराते हुए मुनि श्री श्रीलालजी म. को युवाचार्य पद प्रदान करने का हुकम फरमाया।

श्रीजी म. इस गुरुतर भार को स्वीकार करने के लिये उदासीन थे। परन्तु गुरु-आज्ञा एवं चतुर्विध संघ के आदेश का पालन करने के लिये स्वयं को समर्पित कर दिया।

आचार्य श्रीजी ने चतुर्विध संघ की अनुमोदनापूर्वक उसी समय श्रीजी म. को युवाचार्य पद प्रदान किया और चतुर्विध संघ को उनकी आज्ञा पालन करने का हुक्म फरमाया।

आचार्यप्रवर का स्वास्थ्य दिनोंदिन क्षीण होता जा रहा था और कार्तिक शुक्ला 8 की रात्रि में संथारा पूर्वक देह त्याग कर वे स्वर्ग सिधारे।

आचार्य श्रीजी के दिवंगत हो जाने से चतुर्विध संघ शोकाकुल था, किन्तु संघ व्यवस्था के लिये सर्वाधिकार-सम्पन्न आचार्य पद की पूर्ति की मुख्यता को ध्यान में रखकर कार्तिक शुक्ला 9 के प्रातः चतुर्विध संघ की उपस्थिति में स्थविर मुनिश्री वृद्धिचन्दजी म. ने युवाचार्य श्री श्रीलालजी म. को आचार्यश्री की पछेवड़ी धारण कराई। चतुर्विध संघ ने अपने नव प्रतिष्ठित आचार्यश्री को जय-विजय शब्दों से वधाया। उसी समय शास्त्रज्ञ श्रावक सेठ श्री अमरचन्दजी पीतलिया ने चतुर्विध संघ को सम्बोधित करते हुए कहा— आज से श्रीलालजी म. आचार्य पदारूढ़ हुए हैं, इसलिए चतुर्विध संघ को उनकी आज्ञा पालन करना कर्तव्य है। सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार वे दीक्षा में वड़े मुनिराजों को वंदना करेंगे और छोटे मुनिराज उन्हें वंदना करेंगे। परन्तु उनकी आज्ञा का पालन करना सबका कर्तव्य है।'

चतुर्विध संघ ने सामूहिक रूप में इस घोषणा का अनुमोदन किया।

जनपद विहार

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो जाने के वाद श्रीजी म. की विनम्रता और अधिक वढ़ गई। चतुर्विध संघ का प्रत्येक व्यक्ति उनकी सारजा-वारजा प्रवृत्तियों से हर्षित था और अपने-अपने क्षेत्रों में पदार्पण करने की आतुरता से प्रतीक्षा करता था।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् अपने संतमंडल के साथ आचार्य श्रीजी म. ने मेवाड़ की दिशा में विहार किया और विहार करते हुए मेवाड़ के मुख्य नगर उदयपुर पधारे।

श्रीजी म. उदयपुर पहले भी पधारे थे। उस समय की स्मृतियां जनमानस में सुरक्षित थीं और अव का पर्दापण अपने में विशेष महानता संजोये था। अतः श्री संघ चाहता था कि आचार्य पद प्राप्ति के वाद का यह प्रथम चातुर्मास यहां हो। लेकिन सुदूर मारवाड़ के श्री संघों की भावनाओं को ध्यान में रखकर भविष्य में भावना की पूर्ति का आश्वासन देकर पूज्य श्रीजी ने उदयपुर से मारवाड़ की ओर विहार किया।

वि. सं. 1958-59 के वर्षावास क्रमशः जोधपुर व बीकानेर में हुए। वीकानेर चातुर्मास जिन धार्मिक प्रभावनाओं एवं मूक प्राणियों को अभयदान देने सम्वन्धी कार्यों से सम्पन्न हुआ, उनमें कतिपय महत्वपूर्ण उपलब्धियां ये हैं—

श्री गणेशलालजी मालू जो साधुमार्गी जैन होते हुए भी साधुमार्गी जैन धर्म के कट्टर विरोधी थे। पूज्य श्रीजी म. के परिचय और सदुपदेश से सुदृढ़ श्रावक वन गये तथा चातुर्मास में दर्शनार्थ आये सैकड़ों वन्धुओं के आगत-स्वागत-भोजनादि के सभी प्रवन्ध अपनी ओर से किये। इतना ही नहीं, जैन धर्म के उद्योत के लिये और जनसमूह के हितार्थ परमार्थ कार्यों में लाखों रुपयों का सद्व्यय किया।

इसी चातुर्मास में वख्तावर नाम की वेश्या ने पूज्य श्रीजी के सदुपदेश से अपनी वृत्ति का यावज्जीवन के लिये त्याग कर श्रावकाचार के अनुसार पवित्र व धर्ममय जीवन व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की तथा यावज्जीवन प्रतिज्ञानुसार जीवन विताया।

इन चातुर्मासों व थलीप्रदेश में विहार होने पर वहीं के जैन वन्धुओं ने दया-दान विषयक जैन सिद्धान्तों को समझा। साध्वाचार के लिये वनाई गई कपोलकल्पित धारणाओं का त्याग किया। साधारण प्रजा ने दुर्व्यसनों से मुक्ति पाई। राजा, महाराजा, जागीरदारों ने पशुवध रोकने एवं अनेक लोककल्याणकारी कार्यों को करने के आज्ञा पत्र निकाले।

जन्मभूमि में धर्मजागृति

मारवाड़, मेवाड़, मालवा के प्रत्येक क्षेत्र पूज्य श्रीजी म. के पदपंकजों से पवित्र हो चुके थे। हाड़ौती और ढूंढार प्रदेश पूज्य श्रीजी की पदरज के लिये लालायित हो रहे थे। वर्षों से वे अपनी कामना व भावना निवेदन करते आ रहे थे कि भंते ! 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' को ध्यान में रखकर हमारे प्रदेश को पावन बनायें एवं धर्मदीप से हमारे अन्तर को आलोकित करें।

पूज्य श्रीजी म. ने भावना को सफल करने के लिये वि. सं. 1961 का चातुर्मास जन्मभूमि टोंक में किया। टोंकवासी हर्षविभोर थे। द्वार-द्वार सभागतों के स्वागत सम्मान के लिये समान भाव से संलग्न थे, क्योंकि उनका अपना आज अपने आंगन आया है।

भोगोपभोगों में अनुरक्त मानवों का मार्गान्तरीकरण कर योगानुसारी बनाने में पूज्य श्रीजी म. कुशल कलाकार थे। इसीलिए चातुर्मास काल में सभी नगरवासियों ने अपनी श्रद्धा-भक्ति-शक्ति के अनुसार सावद्य प्रवृत्तियों का आजीवन अथवा नियत काल के लिये प्रत्याख्यान किया, वहीं टोंक नवाब ने आपके उपदेश से प्रभावित होकर आजीवन के लिये शिकार व मांसाहार का त्याग कर दिया।

नवाब साहब के इस त्याग का समग्र हाड़ौती प्रदेश पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि ग्राम-ग्राम और नगर-नगर में पशुहिंसा व मांसाहार त्याग की लहर फैल गई। हजारों लाखों मूक प्राणियों को सदा-सदा के लिये अभयदान मिला। जनमानस को व्यसनमुक्ति के साथ-साथ आत्म-निरीक्षण की प्रेरणा मिली।

सौराष्ट्र की स्वर्णभूमि में

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् समस्त हाड़ौती और ढूंढार की धरती को धर्मोपदेश से मुखरित करते हुए पूज्य श्रीजी म. पुनः मेवाड़ की ओर पधारे तथा वि. सं. 1962–67 तक के छह वर्षों में पुनः मेवाड़, मालवा, मारवाड़ के क्षेत्रों में विचरण कर चतुर्विध संघ की धर्म भावना को सबल बनाया।

इन्हीं वर्षों में चतुर्विध संघ की व्यवस्था पर विचार व निर्णय करने के लिये श्रावक वर्ग के प्रयत्न हो रहे थे। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप वि.सं. 1966 के फाल्गुन मास में श्री अ.भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस का अजमेर में अधिवेशन हुआ। पूज्य श्रीजी म. चतुर्विध संघ की भावना को सफल बनाने के लिये वि.सं. 1966 चैत्र कृष्णा 2 को अजमेर पधारे। इस समय हजारों श्रावक-श्राविकाओं के अतिरिक्त करीब 150 संत सतियों का भी अजमेर पदार्पण हुआ था। सौराष्ट्र के श्री संघों के हजारों प्रतिनिधि श्रीमान् मोरवी नरेश, लींबडी नरेश के नेतृत्व में आये थे।

इन नरेशों ने सौराष्ट्र के श्रीसंघों के साथ मुख्य रूप से निजी भावनाओं को व्यक्त करते हुए शीघ्र ही सौराष्ट्र पधारने का साग्रह अनुरोध किया कि आप श्री का पधारना सौराष्ट्र के लिये कल्याणप्रद है।

पूज्य श्रीजी म. ने प्रजा और प्रजापतियों के अनुरोध के लिये तत्काल कोई निश्चित समय का उत्तर नहीं देकर सौराष्ट्र की ओर विहार करने का आश्वासन दे दिया।

वि. सं. 1967 का ब्यावर का चातुर्मास पूर्ण कर पूज्य श्रीजी म. आश्वासन की पूर्ति के लिये भगवान नेमिनाथ के देशना के संस्कारों से अनुप्राणित स्वर्णभूमि सौराष्ट्र की ओर विहार कर प्रवेशद्वार जैसे पालनपुर नगर में पधारे। सौराष्ट्र के श्री संघों ने अगवानी करते हुए अपने-अपने क्षेत्रों में चातुर्मास करने की विनती की। किन्तु सौराष्ट्र में प्रथम चातुर्मास होने का लाभ राजकोट श्रीसंघ को प्राप्त हुआ।

तत्पश्चात् पालनपुर से विहार कर पूज्य श्रीजी म. सिद्धपुर, महसाना, वीरमगाम और लखतर आदि क्षेत्रों में उपदेशों की पावनधारा बहाते हुए वढवाण पधारे। यहां लींवड़ी सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध मुनिश्री उतमचन्दजी म. ठा. 5, मुनि श्री मोहनलालजी म.ठा. 7, मुनि श्री अमीचन्दजी म. ठा. 5, कुल ठा. 17 से मिलन हुआ और लींवड़ी सम्प्रदाय के पूज्यश्री मेघराजजी म. आदि ठा. के विशेष आग्रह को ध्यान में रखकर लींवड़ी पधारे। यहां सभी नागरिकों के साथ अपने राज्याधिकारियों सहित लींवड़ी नरेश प्रवचन श्रवण के लिये पधारते थे। पूज्य श्रीजी म. का यह लींवड़ी प्रवास श्रमण भगवान महावीर के सर्वोदयतीर्थ की परिकल्पना को साकार करने में पूर्णत: सफल रहा।

शारीरिक स्वास्थ्य प्रतिकूल होते हुए भी पूज्य श्रीजी म. अपने शिष्य परिकर के साथ वि.सं. 1968 के चातुर्मासार्थ राजकोट पधार गये। पूज्य श्रीजी म. की उपदेशवर्षा से जनमानस तो रमणीय हो रहे थे, किन्तु मेघवर्षा न होने से दुष्काल पड़ने की आशंका होने लगी। आशंका का उन्मूलन करने के लिये पूज्य श्रीजी म. ने अपने उपदेशों में मुख्य रूप से जीवदया का प्रतिपादन किया। परिणामत: दुष्काल का निवारण करने के लिये धनवर्षा की अजस्रधारा वह गई। धनिक वर्ग ने 'पहले शाह बाद में बादशाह' की उक्ति को चरितार्थ कर दिया। प्रान्त-प्रान्त के श्रीमन्तों ने मनुष्यों के लिये अन्न के भंडार और मूक पशुओं के लिये घास के भंडार भर दिये। इसके सिवाय अनेक सर्वजनोपयोगी स्थायी कार्य हुए जो आज भी पूज्य श्रीजी म. की कीर्ति से समग्र सौराष्ट्र को व्याप्त कर रहे हैं।

चातुर्मास पूर्ण कर पूज्य श्रीजी म. ने समग्र सौराष्ट्र को पदपद्मों से पवित्र बनाने के लिये विहार किया। शेष काल के आठ मासों के विहार से वहुत वड़े भूभाग को पावन किया।

मोरवी नरेश एवं श्री संघ की वलवती भावनाओं को मूर्त रूप देने के लिये पूज्य श्रीजी म. का वि. सं. 1969 का चातुर्मास मोरवी हुआ। धर्मध्यान, तपश्चरण एवं जनमंगल की योजनाओं से यह सम्पन्न हुआ। यहां विशेष उल्लेखनीय यह है कि चातुर्मास के पूर्व बीकानेर में शतावधानी पं. र. मुनिश्री रतनचन्दजी म. स. से मिलन हुआ तथा उनसे चन्द्र-सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र का अध्ययन किया।

पुन: राजस्थान की ओर

पूज्य श्रीजी म. का यह अल्पकालिक प्रवास सौराष्ट्र के लिये लाभदायक सिद्ध हुआ। अभी भी वहां के श्रीसंघ ग्रामानुग्राम विहार के लिये उत्सुक थे। किन्तु सम्प्रदाय के संत मंडल का वहुभाग मालवा, मारवाड़ में होने से तथा आर्याजी नानी वाई म. के अकस्मात् अस्वस्थ हो जाने एवं पूज्य श्रीजी म. के दर्शन व आलोचना कर प्रायश्चित लेने की प्रवलतम अभिलाषा को जानकर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् मारवाड़ की दिशा में विहार करना योग्य माना और मार्गवर्ती ग्राम-नगरों में विचरण करते हुए अहमदावाद पधारे। कुछ दिन वहां विराजने के वाद पालनपुर आये। श्रावकों की मनुहारभरी विनती को ध्यान में रखकर वीस दिन वहां विश्राम किया। शारीरिक स्थिति एवं वृद्धावस्था के कारण यह विश्राम करना लाभदायक रहा।

क्रमश: पालनपुर से विहार कर पूज्य श्रीजी म. मारवाड़ की भूमि पाली पधारे और वि.सं. 1970 का चातुर्मास जोधपुर किया। चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् व्यावर, अजमेर, जयपुर, टोंक आदि में धर्मोद्योत करते हुए और कल्प के अनुसार एक माह रामपुरा में विराजने के वाद सम्प्रदाय की सुव्यवस्था करने के विचार से वि. सं. 1971 के वर्षावास हेतु रतलाम पधारे।

सम्प्रदाय व्यवस्था : नीति निर्धारण

चातुर्मास तो शांतिपूर्वक व्यतीत हुआ परन्तु कार्तिक शुक्ला 10 को अकस्मात् पूज्य श्रीजी के पांव में दुस्सह दर्द हो जाने से मिगसर कृष्णा 1 को विहार न हो सका। इस तीव्र वेदना ने पूज्य श्रीजी म. को भावी संघ व्यवस्था के लिये आवश्यक उपाय करने हेतु प्रेरित किया और चतुर्विध संघ की उपस्थिति में यह घोषणा की गई—

1. पूज्य श्रीजी म. द्वारा दीक्षित अथवा उनकी सेवा में करने वाले संतों की सार-संभाल पूज्य श्रीजी म. स्वयं करेंगे।

2. श्री चतुर्भुज स्वामीजी म. के नेत्राधवर्ती श्री कस्तूरचन्दजी म. आदि संतमंडल की सारणा-वारणा आदि का भार स्वामीजी मुन्नालालजी म. सम्भालेंगे।

3. स्वामीजी राजमलजी म. के परिवार में श्री रतनचन्दजी म. के संतों की व्यवस्था श्री देवीलालजी म. करेंगे।

4. पूज्य श्री चोथमलजी म. के परिवार के संत श्री डालचन्दजी म. के नेश्राय में रहेंगे।

5. स्वामीजी श्री राजमलजी म. के शिष्य श्री घासीलालजी म. के परिवार की सम्भाल श्री जवाहरलालजी म. करेंगे।

पूज्य श्रीजी म. की इस घोषणा को चतुर्विध संघ ने सहर्ष स्वीकार किया। इस समय मुनिराज ठाणा 25 तथा आर्याजी म. ठाणा 60 के करीव रतलाम में विराजमान थे।

उक्त घोषणा के वाद पगपीड़ा में कुछ आराम होने पर वि.सं. 1971 मिगसर शुक्ला 5 को पूज्य श्रीजी म. रतलाम से विहार कर जावरा पधारे।

आगामी चातुर्मास के लिये जावरा श्री संघ उत्सुक था। किन्तु विशेष उपकार होने की सम्भावना से पूज्य श्रीजी म. ने मेवाड़ की दिशा में प्रस्थान करने का विचार जावरा श्री संघ को वताया और श्री संघ की स्वीकृति पूर्वक मेवाड़ की ओर विहार किया।

पूज्य श्रीजी म. ने वि.सं. 1971 का चातुर्मास उदयपुर किया। तत्पश्चात् मेवाड़, मेरवाड़ा के क्षेत्रों में विचरण करते हुए अजमेर पधारे। यहां जैनाचार्य श्री रतनचन्दजी म. की सम्प्रदाय के आचार्य श्री विनयचन्दजी म. का स्वर्गवास हो जाने पर सम्प्रदाय की व्यवस्था वनाये रखने के लिये हजारों श्रावक श्राविकाओं एवं संत सतीवर्ग की उपस्थिति में श्री शोभाचन्दजी म. को विधिपूर्वक आचार्य पदारूढ़ होने के कार्य को सम्पन्न कराया।

अजमेर से विहार कर पूज्य श्रीजी म. वीकानेर क्षेत्र का स्पर्श करते हुए थली प्रदेश के मुख्य नगर सुजानगढ़ पधारे। यहां वि.सं. 1972 फाल्गुन शुक्ला 6 शुक्रवार को वीकानेर निवासी श्री पोखरमलजी की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई। सहृदय वन्धुओं ने दीक्षा महोत्सव में पूर्ण सहयोग दिया।

तत्पश्चात् पूज्य श्रीजी म. ने थली प्रदेश की ओर विहार किया। कतिपय विघ्न संतोषी गृहस्थों एवं साधुवर्ग ने इस विहार में अपनी मनोवृत्ति का प्रदर्शन भी किया। परन्तु जैन सिद्धान्तों की सही व्याख्या समझने वाले प्रवुद्ध वर्ग में अनूठे उत्साह का संचार हुआ।

इन्हीं दिनों सम्प्रदाय में वितंडावाद, विसंवाद फैलाने के विचार से कुछ संतों ने जोधपुर में एकत्रित होकर अपना पृथक आचार्य बनाने के लिये श्री संघ को प्रभावित करने की चेष्टा की। किन्तु वे अपनी स्वच्छन्द प्रवृति को मूर्त रूप नहीं दे सके।

वि.सं. 1973 का चातुर्मास बीकानेर में सम्पन्न हुआ। इस समय मुनि मंडल ने दीर्घ तपस्याएं कीं। श्रावक वर्ग ने धर्मध्यान का लाभ लिया। राज्यादेश से वधशालाएं बन्द रहीं।

चातुर्मास के बाद मारवाड़ व जोधपुर राज्य के क्षेत्रों में विचरण करते हुए पूज्य श्रीजी म. चातुर्मासार्थ जयपुर श्रीसंघ की विनती स्वीकार कर ब्यावर, अजमेर होते हुए वि.सं. 1974 का वर्षावास बिताने जयपुर पधारे।

जयपुर राज्य में बकरियों का वध निषिद्ध था किन्तु बकरों का वध होता था। पूज्य श्रीजी म. के उपदेशों से राज्य की ओर से इनका भी वध रोकने का हुकम प्रसारित कर दिया गया।

जयपुर चातुर्मास पूर्ण कर पूज्य श्रीजी म. पुनः जन्मभूमि टोंक पधारे। वहां सामाजिक विवाद को शांत कर रामपुरा पधारे। वहां संजीत निवासी श्री नन्दरामजी की दीक्षा सम्पन्न हुई तथा अन्धविश्वासों का निराकरण करते हुए अहिंसा की विजय वैजयन्ती फहराते हुए उदयपुर महाराजकुंवर की विशेष भावना को ध्यान में रखकर वि.सं. 1975 के चातुर्मास हेतु उदयपुर पधारे।

उदयपुर का यह चातुर्मास जन साधारण की अपेक्षा राजवंश के लिये उपकारी सिद्ध हुआ। इस चातुर्मास के सभी प्रसंग उल्लेखनीय हैं, जिनमें राज परिवार में व्यसन मुक्ति एवं शिकार व मांसाहार के त्याग का प्रसार होने के साथ सारे मेवाड़ में अमारी घोषणायें होना प्रमुख है। सभी जागीरदारों, ठाकुरों, राजा रजवाड़ों ने देवी-देवताओं के नाम व स्थान पर मौके बे मौके होने वाले पशुवध पर रोक लगा दी। अनेकों साधारण जनों ने यावज्जीवन के लिये पशुवध से आजीविका करने का त्याग कर दिया।

युवाचार्य की घोषणा

इस चातुर्मास काल में देश के सभी प्रान्तों की तरह मेवाड़ में भी इन्फ्लूएन्जा रोग फैल रहा था। पूज्य श्रीजी म. भी रोगग्रस्त हो गये। औषधोपचार से आराम तो हो गया परन्तु अपनी शारीरिक स्थिति एवं क्षण भंगुरता का विचार कर पूज्य श्रीजी म. ने सम्प्रदाय की समुन्नति एवं सुव्यवस्था के बारे में गम्भीर विचार करके भावी आचार्य के रूप में न्याय विशारद पं. र. श्री जवाहरलालजी म. को युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित करने का निश्चय किया और उदयपुर व दूसरे-दूसरे श्रीसंघों के अग्रगण्य श्रावकों को अपना विचार बताया। सभी ने इस सुविचार की प्रशंसा करते हुए अनुमोदना की। संत-सती-वर्ग ने अपनी सहमति प्रगट कर पूज्य श्रीजी म. के विचारों का समर्थन व अभिनन्दन किया।

उन दिनों पं. र. श्री जवाहरलालजी म. दक्षिण में विराज रहे थे। प्रमुख श्रावकों ने उनकी सेवा में उपस्थित होकर पूज्य श्रीजी म. के निश्चय का निवेदन किया। तब पं. र. श्री जवाहरलालजी म. ने आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए पूज्य श्रीजी म. के दर्शन करने की मनोभावना बताई। अग्रगण्य श्रावकों ने वापस उदयपुर आकर पूज्य आचार्य देव की सेवा में भावी आचार्यप्रवर की अभिलाषा का संकेत किया।

पूज्य श्रीजी म. ने मनोभावना के प्रति प्रमोद भाव प्रकट करते हुए चातुर्मास समाप्ति के बाद मालवा की ओर तथा भावी आचार्य श्रीजी ने दक्षिण से पूज्य श्रीजी म. की सेवा में आने के लिये मालवा की ओर

प्रस्थान किया। दोनों प्रकाशपुंजों का रतलाम में संमिलन हुआ और वहां वि.सं. 1975 चैत्र कृष्णा 9 को पूज्य श्रीजी म. ने अपने करकमलों से पं. र. श्री जवाहरलालजी म. को चतुर्विध संघ की साक्षी पूर्वक युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया।

अन्तिम चातुर्मास

चातुर्मास के लिये वर्षों से किये जा रहे जावरा श्रीसंघ के निवेदन को ध्यान में रखकर पूज्य श्रीजी म. ने वि.सं. 1976 का वर्षावास जावरा में विताया। धर्म प्रभावना के साथ यह चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। संघ संगठन में दरार डालने वाले व्यक्ति सर्व प्रकार से शांति भंग करने के प्रयत्न करते रहे किन्तु वे असफल ही रहे।

चातुर्मास-समाप्ति के वाद पूज्य श्रीजी म. मेवाड़ की ओर विहार करते हुए छोटी सादड़ी पधारे। इस पदार्पण को स्मरणीय वनाने के लिये सेठ श्री नाथूलालजी गोदावत ने सवा लाख रुपयों का दान देकर 'श्री गोदावत जैन शिक्षा संस्था' स्थापित करने की घोषणा की। इस विहार में युवाचार्य श्रीजी भी साथ थे।

सम्प्रदाय के कुछ मुनिराजों द्वारा हो रहे दुष्प्रचार का समाधान करने के लिये आगरा, जयपुर, अजमेर आदि के प्रमुख सज्जनों की प्रार्थना और सम्प्रदाय में एकरूपता लाने को ध्यान में रखते हुए पूज्य श्रीजी म. ने अजमेर पधारना स्वीकार किया। अपनी शारीरिक स्थिति की उपेक्षा करके संगठन को सवल वनाने में पूर्ण सहयोग देने के लिये डूंगराल प्रदेश के परीषहों को सहन करते हुए संत मंडल सहित निर्धारित तिथि पर अजमेर पधारे।

श्रावकों और संत मंडल ने समाधान की अनेक योजनाएं वनाई। विचार-परामर्श हुआ। उदयपुर महाराणा ने अपने प्रतिनिधि श्री वलवन्तसिहजी कोठारी को भेजा। पूज्य श्रीजी म. ने समाधान के सभी प्रयत्न किये, परन्तु कदाग्रह एवं पक्षपात की प्रवलता के कारण सभी प्रयत्न निष्फल रहे।

पूज्य श्रीजी म. इस कदाग्रह से वहुत खेदखिन्न हुए और अन्त में उपस्थित चतुर्विध संघ के समक्ष अपनी मनोवेदना को प्रगट करते हुए भवितव्यता को प्रवल मानते हुए उन्होंने अजमेर से विहार कर दिया।

इस समय पूज्य श्रीजी म. द्वारा प्रगट किये गये हृदयोद्गार इस उक्ति को चरितार्थ करते हैं :—

पक्ष छोड़ पारखी निहाल और नीकी कर।

अवसान

पूज्य श्रीजी म. अजमेर से विहार कर ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आषाढ़ कृष्णा 14 को वलून्दा से जैतारण पधारे। आषाढ़ कृष्णा 30 (अमावस्या) को प्रातः प्रवचन के वीच चक्कर आने लगे और आंखों में अंधेरा-सा छा गया। कुछ क्षण रुककर चश्मा लगाकर शास्त्र वांचना शुरू ही किया था कि पुनः चक्कर आया, सिर में असह्य दर्द होने लगा। तव शास्त्र का पाना लिये बिना ही गाथा की व्याख्या करना चालू किया ही था कि पुनः चक्कर आने पर पाट से उठकर अन्दर कमरे में आये और संतों से कहा कि मैंने ज्ञानीजनों से सुना है कि वैठे-वैठे यकायक देखना वन्द हो जाये तो मृत्यु समीप आ गई समझना चाहिये। इसलिये मुझे संथारा करा दो और मुनिश्री हरकचन्दजी आ जायें तो मैं आलोचना कर लूं—

मुनि श्री हरकचन्दजी म. उन दिनों व्यावर विराजते थे। खवर मिलते ही वे उग्रविहार कर आषाढ

शुक्ला 1 के प्रातः जैतारण पधार गये। उनसे पूज्य श्रीजी म. ने कहा मुझे आपकी मुहपट्टी भी नहीं दिख रही है। अव मुझे शीघ्र ही संथारा कराओ। आया और काया के विलग होने में अव देर नहीं है।

पूज्यश्रीजी म. सिर में तीव्र वेदना के होने पर भी समाधिस्थ होकर शिष्यों व श्रावकों को शास्त्राज्ञा समझा रहे थे।

संत और श्रावक वाह्योपचार कर रहे थे, तव पूज्य श्रीजी म. ने फरमाया— वाहर के उपचार करने की वजाय अव आन्तरोपचार करने की ओर ध्यान दो और अन्तिम विदा लेते हुए से वोले—मुनिराजो ! संयम को दिपाना, हुकम सम्प्रदाय को दिपाना, भावी आचार्य श्री जवाहरलालजी म. की आज्ञा में विचरना, तीर्थंकर भगवन्तों के शासन की शोभा वढ़ाना, क्षमाता हूं, क्षमा करना.... कहते-कहते समयज्ञ पूज्य श्रीजी ने सूत्र पाठ वोलकर गमगीन वातावरण को शान्ति में वदल दिया।

आषाढ़ शुक्ला 2 को दूर-दूर के श्री संघों के हजारों सज्जन जैतारण आ पहुंचे थे। दोपहर को स्थिति की गम्भीरता को समझकर संतों ने सागारी संथारा और शाम को रात होने के करीव जावजीव के लिये संथारा करा दिया। इसी रात के अंतिम प्रहर में करीव 5 वजे पूज्य श्रीजी म. ने इस औदारिक देह का त्याग कर दिया।

हजारों श्रावकों ने एकत्रित होकर पूज्य श्रीजी म. के निर्जीव विनश्वर देह का अग्नि संस्कार किया।

लगभग वत्तीस वर्ष तक आर्हती प्रवज्जा पाल और इसी बीच वीस वर्ष आचार्य पद सुशोभित कर अनेक भव्य जीवों को प्रतिवोधित कर पूज्य श्रीजी म. ने अपना जीवन सार्थक किया। आपका जन्म, आपका शरीर, आपका आचार्य पद आदि सभी जनसमूह के कल्याण के लिये था तथा आपने अपना एक भी शिष्य न वनाने की प्रतिज्ञा का पालन करते हुए भी वहुसंख्यक मुमुक्षुओं को भागवती दीक्षा दी थी। उन्हें कल्याणपथगामी बनाया था। आपका व्यक्तित्व सरल था और कृतित्व प्राणिमात्र को दिशावोध कराने वाला था।

श्रद्धांजलि

पूज्य श्रीजी म. की अथ से इति तक की जीवनगाथा यशस्वी है। आपका चरित्र अलौकिक अनिवर्चनीय था। आपके गुणसमूह का यथातथ्य निरूपण करने में असमर्थ होने से उपसंहार के रूप में अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं—

दम्भोज्झितं निरभिमानिनमात्म लक्ष्यं,
कंदर्प सर्प दशनोत्खनने समर्थम्।
शांतं सदैव करुणावरुणालयं तं,
श्रीलालजिद्गणिवरं प्रणमामि भक्त्या ॥

—दम्भ-आडम्वर जिन्हें लेशमात्र भी पसंद न था। आचार्य पद प्राप्त होते भी जिन्हें अभिमान का स्पर्श भी नहीं हुआ था किन्तु आत्मा की ओर ही जिनका लक्ष्य था। कामदेव रूपी विषैले सर्प की दाढें उखाड़ने में जो विजयी हुए थे, जिनके चहुं ओर शांति स्थापित थी, दया के जो सागर थे, उन आचार्य शिरोमणि श्रीलालजी म. को सभक्ति नमस्कार है।

श्रीसंघों द्वारा श्रद्धांजलि समर्पण योजनायें

पूज्य श्रीजी म. के ऐहिक देहविलय के संवाद से देशवर्ती श्रीसंघों ने अपनी-अपनी श्रद्धांजलियां समर्पित कीं। अपनी-अपनी स्थिति के अनुसार पारमार्थिक कार्यों को किया। पूज्य श्रीजी म. के आदर्शों से स्वयं को अनुप्राणित करने के लिये व्यक्तिगत रूप में भव्य जनों ने धर्माराधना की और त्याग-प्रत्याख्यानों द्वारा संघमोन्मुखी किया।

पत्र-पत्रिकाओं ने अपने असाधारण अंकों में पूज्य श्रीजी म. की विशेषताओं का संकेत करने के साथ प्राणिमात्र के प्रति मैत्रीभाव व्यापक बनाने और अहिंसक समाज की संरचना के लिये कृतसंकल्प सहृदयों से निवेदन किया कि वे पूज्य महाराज श्री के गुणों, कार्यों को अपने जीवन का अंग बनाकर उनकी स्मृति की संरक्षा करें।

शुद्धचारित्र की पालना, आराधना ही पूज्य श्रीजी म. का सच्चा स्मारक है और शुद्धचारित्र की पालना का मुख्य आधार अहिंसा की धारा को अनवरत प्रवाहित रखना है। पूज्य श्रीजी म. ने अहिंसा के लिये अपने जीवन को समर्पित कर दिया था। परिणामत: अंध विश्वासों से आच्छादित मालवा, मेवाड़, मारवाड़ के विस्तृत भूभाग को पशुवध जैसे लोमहर्षक कुकृत्य से मुक्त कराया था। जिसकी प्रतिध्वनि सुदूरवर्ती बुंदेलखंड प्रान्तवर्ती राज्यों तक फैली थी।

इन राज्यों में मैहर का सर्वोपरि स्थान है। वहां प्रतिवर्ष देवी को भोग देने के नाम पर हजारों मूक पशु-पक्षियों का वध होता था। मैहर के नामदार नरेश प्रजा के इस कुकृत्य से दुखी थे और स्वयं रोकने के लिये प्रयत्न करते थे। किन्तु आदिवासी अशिक्षित प्रजा के होने से रोकने में सफल नहीं हो पाते थे। चाहते थे कि किसी न किसी प्रकार यह कुकृत्य सदा के लिये बंद हो जाये।

नामदार नरेश की यह भावना वहां के दीवान श्री हीरालालजी गणेशजी अंजारिया और वम्बई श्रीसंघ के प्रमुख सेठ श्री मेघजीभाई थोमणभाई व श्री शांतिदासजी आसकरणजी जे. पी. के सहयोग से सफल हुई। वहां पशुबद्ध बन्द होने के साथ-साथ पूज्य श्रीजी म. की पुण्य स्मृति में हॉस्पिटल बनाने का निश्चय किया गया। राज्यादेश से देवी-देवता के स्थानों पर पशुवध होना रोक दिया गया तथा करने वाले व उसके लिये प्रेरणा देने वालों को कारावास, अर्थ दंड देने की कड़ी व्यवस्था की गई। प्रजा में विवेक आने से पशुवध की प्रथा मिट गई।

बीकानेर श्रीसंघ ने आस-पास के क्षेत्रों का सर्वतोमुखी विकास करने एवं पूज्य श्रीजी म. की भावना को स्थायी बनाने की दृष्टि से एक संस्था स्थापित करने का निश्चय किया और सदस्यों के अनुमोदन पूर्वक 'श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था' के नाम से संस्था स्थापित की गई।
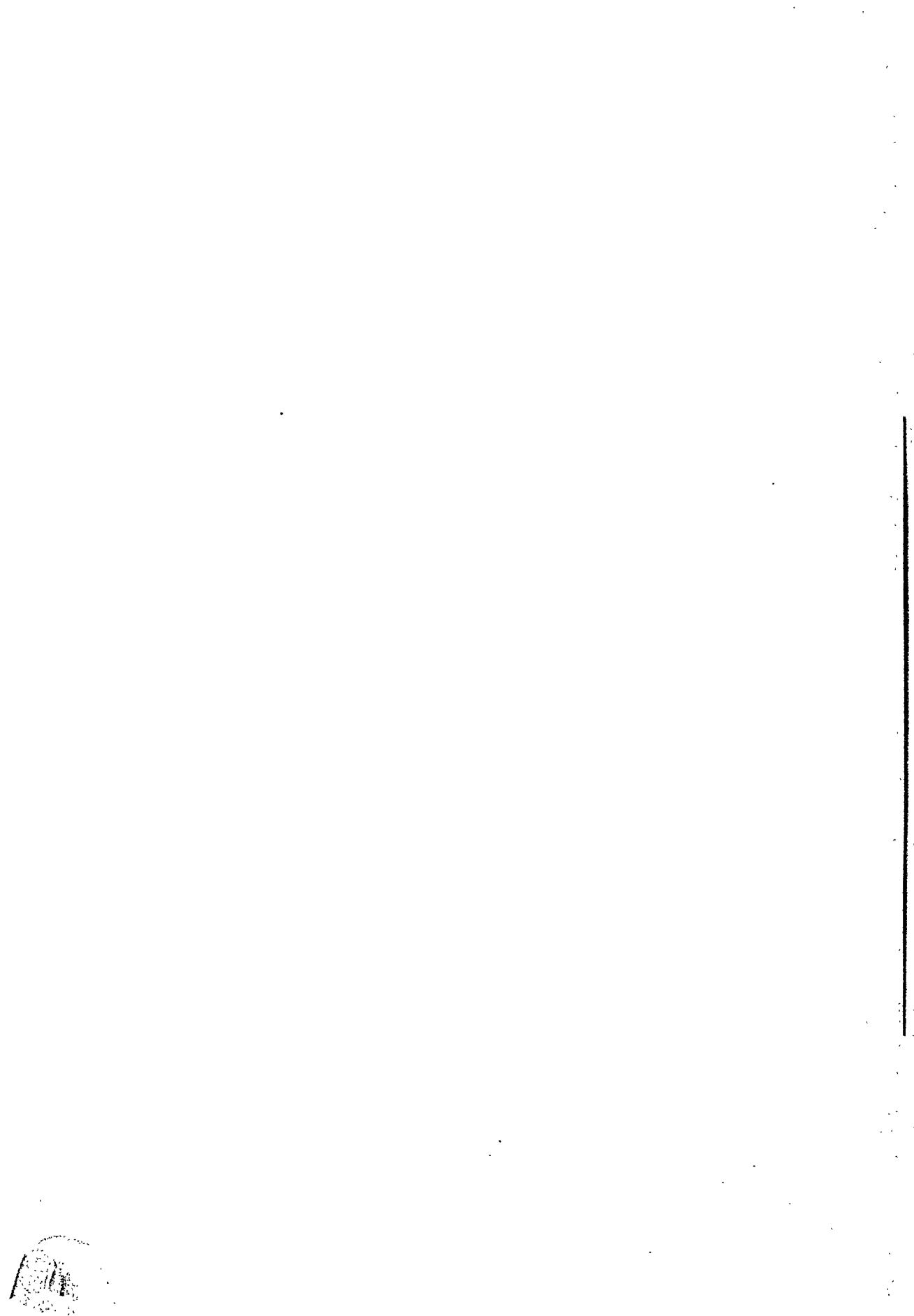
संस्था की कार्यप्रणाली आदि के बारे में सभी पहलुओं से विचार करने के बाद वि. सं. 1984 आसौज शुक्ला 10 को विधिवत संस्था स्थापित की गई। आज संस्था को स्थापित हुए 63 वर्ष होने जा रहे हैं। इस सुदीर्घकाल में संस्था के कार्यों का लेखा-जोखा करने आदि की दृष्टि से हीरक जयन्ती समारोह के माध्यम से उपस्थित हो रहे हैं।
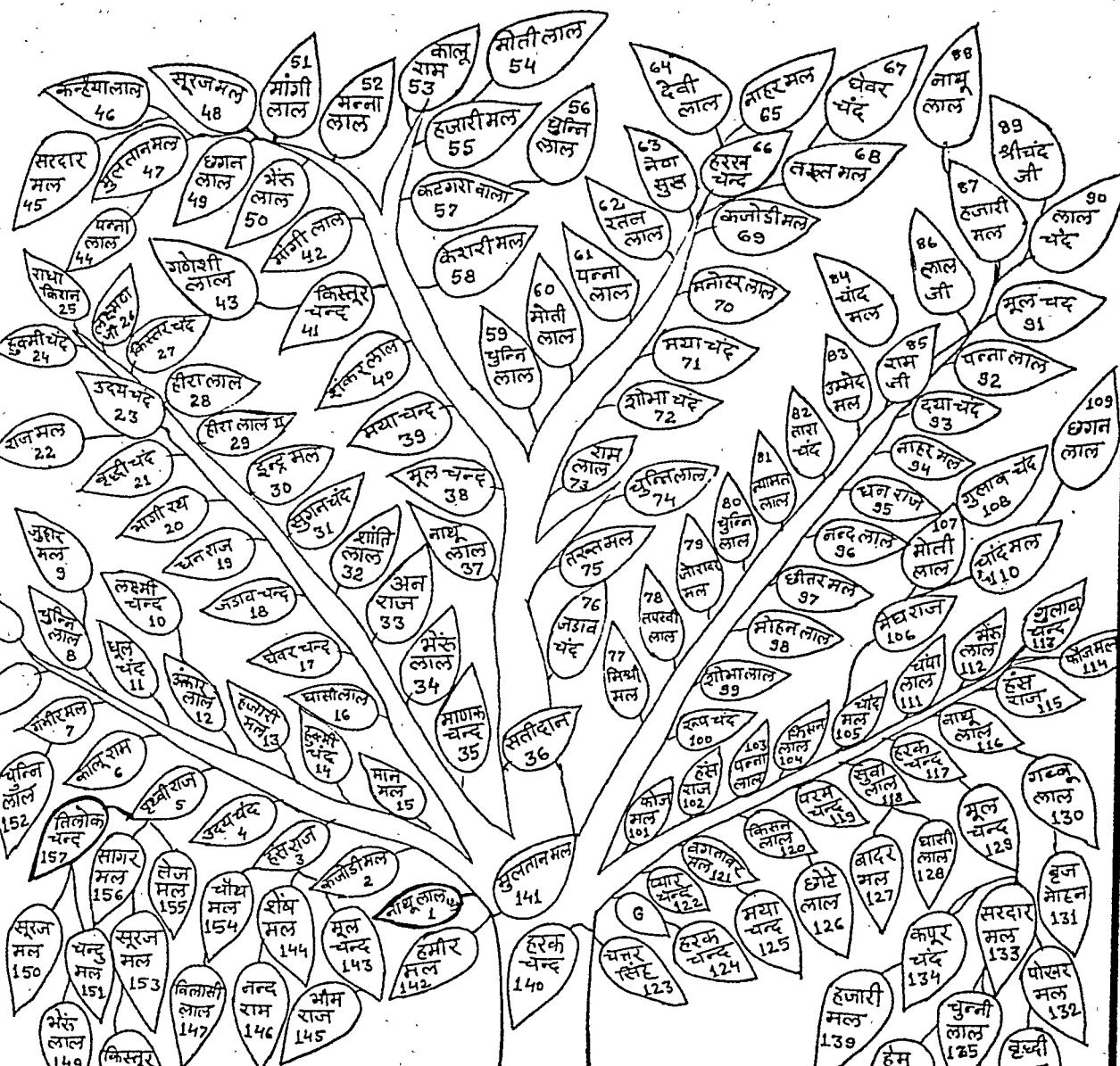
संस्था के कार्यों का विवरण आगे के पृष्ठों में अंकित है।

□

परिचय

प्रकाशक : श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

अन्र्तभावना के दो शब्द

स्थापना काल से लेकर अभी तक का संस्था का विवरण प्रकाशित करते हुए प्रसन्नता हो रही है।

संस्था ने अपने सीमित साधनों के द्वारा जन उपयोगी कार्य किये हैं।

संस्था के संस्थापकों ने विधान में यह नियम बनाया था कि मूल धन को सुरक्षित रख कर उसके ब्याज से होने वाली आय को जन उपयोगी कार्यों में लगाया जाए, तदनुसार संस्था अपनी प्रवृत्तियां संचालित करती रही है।

अभी संस्था की हीरक जयन्ती मनाने का निर्णय होने के बाद दिनांक 29-7-90 की जनरल कमेटी की बैठक में यह निश्चय किया गया।

हीरक जयन्ती के अवसर पर संस्था को सहयोग के रूप में जो धनराशि प्राप्त हो उसको सुरक्षित रखते हुए ब्याज की आय को जन उपयोगी कार्यों में लगाया जाए।

इस प्रकार से कोष वृद्धि होने पर मुझे आशा है कि संस्था अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने के साथ-साथ जन उपयोगी कार्य करने में प्रगति करती रहेगी।

अब अपनी अन्र्तभावना—संस्था के माध्यम से समाज सेवा करने का जो मुझे अवसर मिला, उसे मैं अपने जीवन की महान उपलब्धि मानता हूं।

मैंने अपनी कार्य क्षमता और योग्यता से समाज हित के लिए जिसे उचित माना संस्था के माननीय सदस्यों के परामर्श अनुसार पूर्ण करने का ध्यान रखा है, संभव है उसमें कहीं कभी स्खलना भी हुई होगी। लेकिन उसकी ओर ध्यान नहीं देकर सदस्यगण कार्य करने के लिए प्रेरित करते रहे, एतदर्थ उनका कृतज्ञ हूं।

संस्था अपनी प्रवृतियों द्वारा समाज की सर्वांगीण उन्नति करती रहे यह कामना है एवं भविष्य में भी संस्था की प्रवृत्तियां सुचारू रूप से चलती रहे यह संस्था के सभी सदस्यों, पदाधिकारियों और सहयोगियों से अनुरोध है।

हीरक जयन्ती समारोह के सदस्यों, कोष वृद्धि के अर्थ सहयोगियों एवं अर्थ संकलन कराने में योग देने वाले सज्जनों, स्मारिका के लिए विज्ञापन दाता महानुभावों का सधन्यवाद आभार मानता हूं।

सुन्दरलाल तातेड़
मंत्री
श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन
हितकारिणी संस्था, बीकानेर

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था

परिचय-प्रवृत्ति-विवरण

व्यक्ति रूप में स्वनिर्माण करते हुए भी सामुदायिक विकास करने के लिये पारस्परिक सहयोग करना मानव मात्र की अभिलाषा का अंग है, स्वाभाविक वृत्ति है। इसीलिये वह प्राणिमात्र की सुख-शान्ति-संतोषवृद्धि की प्रवृत्तियों में सहकार देने के लिये तत्पर रहता है।

जैन सिद्धान्तों में इन्हीं प्रवृत्तियों पर भार दिया गया है। तीर्थंकर भगवन्तों, उत्तरवर्ती जैनाचार्यों की परम्परा एवं उनके अनुयायी वर्ग ने इन्हीं का प्रचार-प्रसार किया है। इतिहास के पानों में यह सब स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उन्हीं पानों में से यहां एक पाने का उल्लेख करते हैं। यह पाना हम आप सब के जाने—समझे समय का है। जो मानव जीवन की तरह अमूल्य है और श्रीमज्जैनाचार्य श्री 1008 श्री श्रीलालजी म. के आदर्शों की सुरक्षा का जीवन्त रूप है।

आचार्य श्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज आदर्श पुरुष थे, मर्यादा प्रतिपालक थे और आत्मगवेषी होने के साथ-साथ जीवहितैषी थे। आपने मानवीय-जीवन की महानताओं का स्पर्श किया था। अतएव—

'नहि कृतमुपकारं साधव: विस्मरन्ति'

की उक्ति का अनुसरण कर पूज्य श्रीजी की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिये किये गये कार्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं।

वि. स. 1977 में श्रीमज्जैनाचार्य श्रीलालजी म. का देहावसान हुआ। उस समय उनकी पावन स्मृति को स्थायी रखने एवं उनके आदर्शों का प्रसार करने के लिये बीकानेर, भीनासर श्रीसंघों के अग्रगण्य सज्जनों ने एक संख्या स्थापित करने का निश्चय किया। संस्था के कार्यक्षेत्र की रूपरेखा बनाने के लिये विचार-परामर्श हुआ। प्रबन्ध-व्यवस्था के बारे में निर्णय किया गया और जब सभी प्रकार से संतोष हो गया, सर्वानुमति से निश्चय कर लिया गया तब वि. सं. 1984, आसौज शुक्ला 10 (विजयादसमी) को विजय मुहूर्त में— 'श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था' बीकानेर में स्थापित की गई।

संस्था के निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किये गये—

1. श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन धर्म का प्रचार करना।

2. समाज में स्वतन्त्र और स्वाधीन शिक्षा का प्रचार करना।

3. समाज सेवा तथा अन्य समाजहित के कार्य करना।

श्रीमान बदनमलजी बांठिया के करकमलों द्वारा संस्था का उद्घाटन कराया गया।

व्यवस्थित कार्यसंचालन एवं ध्रोव्यकोष की सुरक्षा के लिये प्रवन्धकारिणी समिति और ट्रस्ट कमेटी का निर्माण किया गया। उनके सदस्यों के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—

प्रबन्धकारिणी समिति

सर्वश्री भैरोंदानजी सेठिया (सभापति) जेठमलजी सेठिया (मन्त्री) तथा सदस्य कनीरामजी बांठिया, भैरोंदानजी गोलच्छा, आनन्दमलजी श्री श्रीमाल, मेहता बुधसिंहजी वेद, केसरीचन्दजी डागा, वहादुरमलजी बांठिया, सतीदासजी तातेड़, नथमलजी चोरड़िया और श्रीमती केसरवाई चोरड़िया।

ट्रस्ट कमेटी

सर्वश्री कनीरामजी बांठिया (सभापति), जेठमलजी सेठिया (मन्त्री), सदस्य वदनमलजी बांठिया, हजारीमलजी मालू, मगनमलजी कोठारी।

इस प्रकार से व्यवस्था विधि के लिये आवश्यक कार्यों के सम्पन्न हो जाने के वाद संस्था ने अपना कार्य प्रारम्भ किया।

प्रारम्भ में संस्था ने साहित्यरचना एवं औद्योगिक शिक्षा, इन दो दिशाओं में कार्य करने का निश्चय किया। तदनुसार उद्योगशाला का कार्य श्री मंगलचन्दजी ढ़ढ्ढा की पारखों के मौहल्ले की झोंक वाली कोटड़ी में और साहित्यरचना का कार्य सेठिया ग्रन्थालय भवन में शुरू कराया गया।

साहित्य रचना विभाग

संस्था के साहित्य रचना-विभाग का कार्य वि.सं. 1984, आसोज शुक्ला 10 से वि.सं. 1987 जेठ शुक्ला 9 तक चलता रहा। इस अवधि में निम्नलिखित साहित्य की रचना हुई—

1. आलोयणा, 2. वृत्त बोध (संस्कृत छन्द शास्त्र विषयक ग्रन्थ), 3. जैनागम तावदीपिका (प्रश्नोतरों के द्वारा जैन सिद्धान्तों का ज्ञान कराने वाला ग्रन्थ), 4. श्रीलाल नाममाला (प्रारम्भिक संस्कृत के विद्यार्थियों के लिये जैन पद्धति में रचा गया कोष), 5. शिवकोष (संस्कृत भाषा का विशाल कोष), 6. नानार्थोदय सागर (संस्कृत भाषा के एक शब्द के अनेक अर्थ वताने वाला कोष), 7. आवश्यक सूत्र, 8. दशवैकालिकसूत्र (संस्कृत छाया, अन्वय, विस्तृत संस्कृत एवं हिन्दी टीकासहित), 9. दशवैकालिक सूत्र (अन्वय सहित शद्दार्थ), 10. मुखवस्त्रिका मीमांसा।

उद्योग शाला

स्वधर्मी वन्धुओं को सहायता देने और घर में रहते हुनरों द्वारा आजीविका के साधन जुटाने के लिये जड़ाई, सिलाई, पोवाई, गोटा, सलमा, सितारा, कसीदा, वैठका पूंजनी वनाने आदि को सिखाने के लिये उद्योग-शाला स्थापित की गई थी। किन्तु तीन वर्ष तक घाटा उठाकर भी उद्देश्य में सफलता न मिलने पर वि.सं. 1988 पोष कृष्णा 12-13 की प्रवन्धकारिणी कमेटी के निर्णयानुसार उद्योगशाला को वंद कर दिया गया।

स्वधर्मी सहयोग

उद्योगशाला की प्रवृति में सफलता न मिलने पर जरूरत मन्द स्वधर्मी वन्धुओं को गुप्त रूप से सहायता देने का निश्चय किया गया। तदनुसार सहायता योग्य व्यक्तियों की सिफारिश करने के लिये गंगाशहर, भीनासर, वीकानेर के लिये सहायता सव कमेटियां वनाई गई।

पाठशाला विभाग

दिनांक 11-10-31 की प्रबन्धकारिणी कमेटी की बैठक में शिक्षा प्रचार के लिये गांवों में पाठशालायें खोलने का निश्चय किया गया। निश्चयानुसार भज्झू, नोखा, उदासर, गंगाशहर में बालक-बालिकाओं के लिये पाठशालायें खोली गईं।

संस्था के कतिपय भावी वर्ष

संस्था के प्रारम्भिक वर्षों में संचालित प्रवृत्तियां प्रशंसनीय रहीं। इनके संचालन से प्राप्त अनुभवों के अनुरूप आवश्यक संशोधन कर व्यवस्था को सुदृढ़ बनाया गया। इसी का संकेत करने के लिये चैत्र 1989 से चैत्र 1991 तक के विवरण के कतिपय महत्वपूर्ण मुद्दों का उल्लेख करते हैं।

पूर्व संचालित पाठशालाओं के साथ ग्रामवासियों के आग्रह से सींथल और कक्कू में नई पाठशालायें खोली गई। सहायता सब कमेटियों की सिफारिश से जरूरतमन्द भाइयों को सहायता दी जाती रही।

वि.सं. 1890 के वर्षा काल में घनघोर वर्षा होने से बीकानेर के आसपास के क्षेत्रों में भयंकर जन व पशुधन की हानि हुई। हजारों व्यक्ति बे घरबार हो गये। इस संकट पूर्ण स्थिति का निराकरण करने के लिये अनाज, कपड़ा, घास, चारा, ग्वार आदि के वितरण में हजारों रुपये खर्च किये गये।

विधान में संशोधन कर संस्था के फ्री सदस्य बनाने का निश्चय किया गया।

इन वर्षों में प्रबन्धकारिणी और ट्रस्ट कमेटी के सदस्यों की नामावली में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। किन्तु मन्त्री और कोषाध्यक्ष पद का दायित्व सेठ सतीदासजी तातेड़ को सौंपा गया। इसके बाद 1 अप्रेल 1934 की जनरल कमेटी की बैठक में नई प्रबन्धकारिणी कमेटी के सदस्यों के चुनाव में श्री मगनमलजी कोठारी सभापति व श्री हीरालालजी सिंधी मन्त्री व श्री रोशनलालजी जैन उपमन्त्री नियुक्त किये गये।

वि. सं. 1991 चैत्र शुक्ला 6 से वि. सं. 2001 चैत शुक्ला 8 तक की अवधि में भी साहित्य सेवा, सहायता और शिक्षा प्रचार आदि प्रवृत्तियां पूर्ववत चालू रहीं।

साहित्य विभाग की ओर से प्रकाशित जैनागम तत्त्व-दीपिका, वृत्तबोध, श्रीलाल नाममाला को योग्य छात्रों को अमूल्य देने का निश्चय किया गया तथा श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज का जीवन चरित्र प्रकाशित करना स्वीकार किया गया। इसके लेखन, सम्पादन एवं उपयोगी सामग्री का संकलन करने के लिये 7000) तथा पूज्य श्री के व्याख्यानों को संपादित एवं संबद्ध कराने के लिये 5000) स्वीकार किये गये।

संस्था द्वारा जनराहत के कार्य तो पूर्ववत किये जाते रहे और मूक प्राणियों का औषधोपचार आदि करने के विचार से जीवदया के कार्य करना व करने वालों को आर्थिक सहयोग देना चालू किया गया।

शिक्षा प्रचार का कार्य व्यवस्थित रीति से चलता रहा। संस्था द्वारा स्थापित पाठशालाओं में से राज्य की ओर से शिक्षा की व्यवस्था हो जाने से रासीसर, सींथल, कक्कू, गंगाशहर की शालायें बन्द कर दी गईं।

प्रारम्भ में संस्था की सम्पत्ति की रक्षा और देखरेख के लिये बनाई गई ट्रस्ट कमेटी 11-4-37 की जनरल कमेटी की बैठक के निर्णयानुसार समाप्त कर उसके अधिकार प्रबन्धकारिणी कमेटी को सौंप दिये गये तथा प्रबन्धकारिणी कमेटी को यह भी अधिकार दिया गया कि संस्था के मकान किराये पर देवे, किराया वसूल करे, मकानों की देखरेख करे तथा आवश्यकता होने पर मरम्मत करावे।

प्रवन्धकारिणी कमेटी द्वारा नियुक्त सब कमेटी द्वारा तैयार की गई नवीन नियमावली संस्था की दिनांक 15-6-41 की जनरल कमेटी में स्वीकार की गई। इसमें तत्कालीन स्थिति को ध्यान में रखकर संस्था की सम्पत्ति के बारे में किये गये प्रावधानों का सारांश इस प्रकार है—

'संस्था के स्थायित्व के लिये संस्था में एक लाख या अधिक की चल, अचल स्थायी सम्पत्ति रहेगी। यह स्थायी सम्पत्ति खर्च न की जायेगी। किन्तु जनरल कमेटी आवश्यकता पड़ने पर केवल साहित्य निर्माण के लिये जो वीकानेर या भीनासर में हो या अन्य आकस्मिक कार्य के लिये स्थायी सम्पति में से अधिक से अधिक पन्द्रह हजार रुपया तक उठा सकेगी।

'व्याज उपजाने के लिये संस्था की रकम वीकानेर स्टेट सेविंग वैंक में या भारत सरकार के वॉन्ड खरीदने में लगाई जा सकेगी।

'संस्था की स्थायी सम्पत्ति की आय उसके उद्देश्यों की पूर्ति में ही खर्च की जायेगी। संस्था की सम्पत्ति प्रत्यक्ष या परोक्ष किसी प्रकार से संस्था के सदस्यों या उनके द्वारा किसी अन्य व्यक्ति को नहीं दी जायेगी। न किसी व्यक्तिगत स्वार्थ की पूर्ति के लिये किसी सदस्य या व्यक्ति को कर्ज के रूप में दी जायेगी।

'व्याज या मकान किराया आदि की आय के अन्दर ही वजट वनेगा और उतना ही खर्च किया जायेगा। वार्षिक खर्च के लिये रकम स्थायी सम्पति में से न निकाली जावेगी।'

इन वर्षों में श्री मगनमलजी कोठारी (सभापति) और श्री लहरचन्दजी सेठिया (मन्त्री) के प्रवन्ध में संस्था की प्रवृत्तियां संचालित रहीं।

संस्था के लिये वि. सं. 2001 से 2008 तक के वर्ष महत्वपूर्ण रहे हैं। अतएव अव इन वर्षों के विवरण का विहंगावलोकन कराते हैं।

साहित्य सेवा-विभाग के अन्तर्गत श्रीमज्जेनाचार्य पूज्य श्री 1008 श्री गणेशीलालजी म. के तत्त्वावधान में श्री पं. अम्बिकादतजी ओझा ने निम्नलिखित ग्रन्थों का संशोधन और हिन्दी अनुवाद किया—

1. तन्दुल वेयालिय पइण्णा, 2. सद्धर्म मंडन।

श्री पं. घेवरचन्दजी वांठिया 'वीरपुत्र' से तन्दुल वेयालिय पइण्णा का संशोधन और 'श्री जिन-जन्माभिषेक प्रकरण' तैयार करवाया। तत्पश्चात दोनों ग्रन्थ छपवा दिये गये।

'श्रीमज्जेनाचार्य पूज्य श्री जवाहरलालजी महाराज का जीवन चरित्र' व 'जवाहर विचारसार' भी प्रकाशित किये गये।

श्रीमान् अमरचन्दजी वोथरा ने मरोटी सेठिया मोहल्ला वीकानेर में स्थित एक मकान धार्मिक कार्य हेतु साधुमार्गी श्रीसंघ वीकानेर को अर्पित किया था। मकान वहुत जीर्ण शीर्ण था, जिसके गिर जाने का अंदेशा था। अतः उसके पिछले हिस्से की मरम्मत करवाई गई और अगला हिस्सा नया वनवाया गया, जिसमें 12462) संस्था की ओर से खर्च किये गये।

शिक्षाप्रचार-विभाग के अन्तर्गत नोखामंडी, सोभगा, भादला, नोखागांव और झज्झू की पाठशालायें संचालित करने के साथ-साथ श्री जैन जवाहर विद्यापीठ भीनासर के छात्रों की पढ़ाई व भोजन खर्च के लिये 6750) की सहायता दी गई।

सर्व श्री भीखमचन्दजी भन्साली, सतीदासजी तातेड़, पं. भैरवचन्दजी बांठिया 'वीरपुत्र' क्रमशः मन्त्र कोषाध्यक्ष और उपमन्त्री पद का दायित्व सम्भाल कर संस्था की प्रवृत्तियों को संचालित करते रहे।

इन वर्षों में स्थापना काल से ही संस्था को पूर्ण निष्ठा और उत्साह से सहयोग देने वाले निम्नलिखि सदस्यों के देहावसान होने का दुःखदप्रसंग सहन करना पड़ा।

सर्वश्री सेठ वहादुरमलजी वांठिया भीनासर, सेठ बदनमलजी वांठिया वीकानेर, सूरजमलजी लो वीकानेर, कनीरामजी वांठिया भीनासर, मगनमलजी कोठारी वीकानेर।

दिवंगत आत्माओं को शांति प्राप्ति की कामना करते हुए पारिवारिक जनों के प्रति संवेदना व्यक्त क गई। संस्था की ओर से शोक प्रस्ताव पारित कर इनके परिवारों को भेजे गये।

रिक्त स्थानों की पूर्ति इस प्रकार की गई—सेठ वहादुरमलजी वांठिया के स्थान पर श्री तोलारामज वांठिया और श्यामलालजी वांठिया, श्री सूरजमलजी लोढ़ा के स्थान पर श्री तोलारामजी लोढ़ा।

अभी तक संस्था का कार्यालय श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था के लायब्रेरी भव में था और श्रीमान् सेठ भैरोंदानजी सेठिया की देखरेख में कार्य होता था। किन्तु अव अपनी वृद्धावस्था के कारण सेठियाजी द्वारा असमर्थता प्रकट करने पर दिनांक 25-5-47 की जनरल कमेटी के निर्णयानुसार संस्था क आफिस सभा वाले भवन में ले जाया गया तथा रोकड़ वही आदि का कार्य और रुपयों आदि के लेन-देन का कार्य श्रीमान् सतीदासजी तातेड़ के सुपुर्द किया गया।

संस्था को अपनी स्थापना के समय नकद रुपयों की तरह अनेक सज्जनों की ओर से अचल सम्पत्ति के रूप में मकान, जमीन भी प्राप्त हुई थी। नकद रकम तो वैंकों आदि में जमा करा कर आय का निश्चित उपाय कर लिया गया था। किन्तु अचल सम्पत्ति की योग्य व्यवस्था और भाड़ा आने में कठिनाई आती रहती थी। इसलिये उन मकानों आदि को वेच कर रकम को वैंकों आदि में रखने का निश्चय किया गया।

वर्तमान में चीलो धर्मशाला की जमीन ही संस्था में अचल सम्पत्ति के रूप में शेष है।

संस्था गुणी और समाजसेवी सज्जनों का सदैव सम्मान करती आई है। इस परम्परा का निर्वाह करते हुए अपने वरिष्ठ जनप्रिय एवं कर्मठ सेवाभावी श्रीमान् भैरोंदानजी सेठिया के 81वें वर्ष के मंगल प्रवेश पर सम्मानित कर अभिनन्दन करने का निश्चय किया।

निश्चयानुसार संस्था की ओर से 20-7-1947 को श्री सेठिया जैन धार्मिक भवन में समारोह सभा का आयोजन किया गया। जिसमें स्थानीय एवं सभागत सज्जनों ने सेठियाजी की कीर्ति कोमुदी का दिग्दर्शन कराते हुए अपनी-अपनी आदरांजलि अर्पित की एवं सामूहिक रूप में सम्मान करने के लिये अभिनन्दन पत्र भेंट किया। जिसमें उनकी कार्यकुशलता, संस्था के संवर्धन में योगदान तथा सामाजिक समुत्थान के लिये किये गये प्रयत्नों का उल्लेख करते हुए अभिनन्दन पत्र की तुच्छ भेंट को स्वीकार करने का निवेदन किया गया था।

इस प्रकार से संस्था के वि.सं. 1984 से वि.सं. 2008 चैत्र शुक्ला 8 तक के इतिहास का दिग्दर्शन कराने के वाद अब आगामी वर्षों पर दृष्टिपात करते हैं। इसके लिये समय सीमा निर्धारित करना योग्य मानकर वि.सं. 2008 चैत्र शुक्ला 9 से वि.सं. 2013 चैत्र कृष्णा 15 दिनांक 15-4-1951 से दिनांक 31-3-1957 तक का विवरण प्रस्तुत करेंगे।

इन वर्षों में साहित्य सेवा विभाग द्वारा जैनागम तत्त्वदीपिका की द्वितीय आवृति प्रकाशित की गई।

सहायता व समाज सेवा विभाग के अन्तर्गत स्वधर्मी बन्धुओं को सहायता देने के साथ ही वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रावक संघ सरदारशहर को धर्मध्यानार्थ स्थान खरीदने में सहयोग देने के लिये 4000) तथा वरनाला (पंजाब) में जैन पाठशाला के मकान के लिये 1000) दिये गये।

शिक्षा प्रचार विभाग द्वारा झज्झू की पाठशाला का संचालन होता रहा। अन्य स्थानों पर राजकीय शालायें स्थापित हो जाने से वहां की पाठशालायें बन्द कर दी गई।

जीवदया की प्रवृत्तियां स्थानीय श्रीसंघों के सहयोग से चलती रहीं। पर्यूषणपर्व के अवसर पर कसाई-खाना बन्द रखने के लिये बीकानेर नगरपालिका में धनराशि जमा कराई गई।

संस्था का पंजीकरण

संस्था की दिनांक 4-1-1953 की जनरल कमेटी के निर्णयानुसार दिनांक 23-5-1953 को संस्था की रजिस्ट्री करवाई गई।

वि.सं. 2014 चैत्र शुक्ला 1 से वि.सं. 2017 चैत्र शुक्ला 4 दिनांक 1-4-57 से 31-3-60 के त्रिवर्षीय विवरण के मुख्य मुद्दे इस प्रकार हैं —

इन वर्षों में सहायता, समाजसेवा व जीवदया के कार्य पूर्ववत चलते रहे। विशेष उल्लेखनीय यह हैं— खटीक जैन भाइयों की सहायतार्थ 1000) छोटी सादड़ी तथा 1000) श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फ्रेंस की प्रेरणा से गुडगांव जीवदया के कार्यों के लिये भेजे गये।

शिक्षा प्रचार-विभाग की ओर से झज्झू में संचालित पाठशाला वहां राजकीय स्कूल खुल जाने से वंद कर दी गई। लेकिन विभाग के कार्य में परिवर्तन कर दिनांक 21-4-57 की जनरल कमेटी के निर्णयानुसार मैट्रिक से ऊंची पढ़ाई करने वाले स्थानकवासी जैन छात्रों को छात्रवृति व ऋण छात्रवृति देना प्रारम्भ किया गया। इन तीन वर्षों में 2200) छात्रवृत्ति में तथा 850) ऋण छात्रवृत्ति में खर्च हुए।

इन वर्षों में निम्नलिखित सदस्यों के दिवंगत हो जाने से संस्था की ओर से शोक प्रस्ताव पारित कर पारिवारिक जनों के प्रति संवेदना व्यक्त की गई। प्रस्ताव इनके परिवारों को भेजे गये—

सर्वश्री पीरदानजी सुराणा, हीरालालजी मुकीम, सोहनलालजी बांठिया।

नवीन सदस्यों के रूप में निम्नांकित सज्जनों का चयन किया गया :

सर्वश्री रोशनलालजी चपलोत, पानमलजी सुखलेचा, सम्पतलालजी सेठिया।

उपर्युक्त प्रकार से संस्था के पूवार्ध (वि.सं. 1984 से वि.सं. 2017 तक) की परिचयात्मक रूप रेखा है। अव उत्तरवर्ती कार्यकाल के विवरण के प्रमुख अंशों को प्रस्तुत करते हैं।

श्री जैन शिक्षण संस्था कानोड को सहायता भेजने का निश्चय किया गया।

सन् 1961 के ग्रीष्मावकाश में वालकों को धार्मिक शिक्षण देने के लिये शिविर लगाया गया तथा अहिंसा शोधपीठ को पुस्तक खरीदने के लिये 1000) दिये गये।

दिनांक 28-5-61 की मीटिंग में संस्था के मन्त्री श्री भीखनचन्दजी भन्साली, कोषाध्यक्ष श्री सतीदासजी तातेड़ और उपमन्त्री श्री रोशनलालजी चपलोत के त्याग पत्र पेश किये जाने पर सर्वानुमति से निश्चय किया गया कि संस्था आप महानुभावों की सेवा की आवश्यकता अनुभव करती है, अतः आप पूर्ववतः सहयोग देकर संस्था का कार्य संचालित करते रहें।

संस्था की जनरल कमेटी व प्रवन्धकारिणी कमेटी के सदस्य पूर्ववत रहे। विशेष यह है कि श्री सुन्दरलालजी तातेड़ दोनों कमेटियों के सदस्य चुने गये।

दिनांक 27-8-61 वि.सं. 2018 भाद्रपद कृष्णा 12-13 रविवार को श्री चम्पालालजी वांठिया के सभापतित्व में जनरल कमेटी का विशेष अधिवेशन श्री सेठिया जैन धार्मिक भवन में हुआ। जिसमें श्रीमान् भैरोंदानजी सा. सेठिया का स्वर्गवास हो जाने से शोक प्रस्ताव पारित कर उनके पारिवारिक जनों को भेजा गया।

दिनांक 22-7-62 की स्थगित जनरल कमेटी की वार्षिक वैठक में संस्था के आजीवन सदस्य श्रीमान् हीरालालजी सा. सिंधी के देहावसान पर शोक प्रस्ताव पारित कर पारिवारिक जनों को भेजा गया।

संस्था के मन्त्री श्री भीखनचन्दजी भन्साली के त्याग पत्र को अस्वीकार करते हुए पूर्ववत्ः कार्य करते रहने के लिये निवेदन किया गया तथा अस्वस्थता के कारण कार्य करने में असमर्थता वताने पर उपमन्त्री श्री रोशनलालजी चपलोत का त्याग पत्र स्वीकार कर सभापति श्री चम्पालालजी वांठिया के प्रस्ताव और श्री पानमलजी सुखलेचा के समर्थन के वाद सर्व सम्मति से श्री सुन्दरलालजी तातेड़ उपमन्त्री निर्वाचित किये गये।

श्री आसकरणजी मुकीम, श्री भंवरलालजी सेठिया हिसाव निरीक्षक चुने गये।

जनरल कमेटी व प्रवन्धकारिणी कमेटी के पदाधिकारी व सदस्य नव निर्वाचितों के अतिरिक्त शेष पूर्ववत् रहे।

दिनांक 14-7-63 रविवार को जनरल कमेटी की वैठक हुई, जिसमें संस्था के स्थायी कोष की वृद्धि के सम्वन्ध में यह निश्चय किया गया :

श्रीमती सुगनीवाई गोलच्छा धर्मपत्नी श्री पूनमचन्दजी गोलच्छा से रुपया 1061)01 पैसा प्राप्त हुए हैं, जिन्हें वर्तमान ध्रुवफंड 113541) में जमा किये जावें। जिससे वर्तमान ध्रुवफंड व श्रीमती सुगनीवाई गोलच्छा से प्राप्त रकम मिल कर 114577)01 न. पै. हुई, वाकी रकम 442)99 पैसे वृद्धि-वटाव खाते से लेकर ध्रुवफंड को 115000) का कर दिया जाये।

अकाल पड़ने की आशंका को देखते हुए इस वर्ष वजट में 2000) अकाल राहत कार्यों में खर्च करने के लिये रखे गये।

अधिक समय कलकत्ता रहने के कारण संस्था के कार्य में सहयोग न दे सकने के विशेष आग्रह को ध्यान में रख कर श्री भीखनचन्दजी भन्साली के मन्त्रीपद के त्याग पत्र को सखेद स्वीकार कर आभार मानते हुए उन्हें धन्यवाद दिया गया।

श्री भन्सालीजी का मन्त्री पद का त्याग-पत्र स्वीकृत हो जाने के बाद रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये अभी तक के उपमन्त्री श्री सुन्दरलालजी तातेड़ को मंत्री तथा श्री रोशनलालजी चपलोत को उपमन्त्री नियुक्त किया गया।

वर्ष 1964-65 के कार्यकाल के बजट में अकाल राहत कार्यों के लिये 2000) का विशेष प्रावधान रखा गया तथा 2000) सरदारशहर के स्थानक में छपरा बनवाने व 1000) श्री जैन शिक्षण संघ कानोड़ में सामायिक भवन के निर्माण हेतु स्वीकृत कर यथास्थान रकम भिजवाई गई।

इसी प्रकार 1965-66 वर्ष में 1000) श्री गोदावत जैन गुरुकुल छोटी सादड़ी को धार्मिक शिक्षण हेतु सहायतार्थ दिये गये।

बीकानेर श्रीसंघ को प्राप्त श्री अमरचन्दजी बोथरा के जिस मकान का अगला हिस्सा पहले बनवाया था, उसके पिछले जीर्णशीर्ण भाग की पुनः मरम्मत कराने के लिये 3000) रुपये स्वीकार किये गये।

इस वर्ष में श्री आसकरणजी मुकीम एवं श्री अजीतमलजी पारख के देहावसान हो जाने से शोक प्रस्ताव पारित कर पारिवारिक जनों को भेजे गये।

वर्ष 1966-67 के कार्यकाल के मुख्य मुद्दे इस प्रकार हैं—

पूर्व वर्षों में जो संस्था का ध्रोव्य कोष 115000) था उसमें वृद्धिवटाव खाते से 6000) लेकर 121000) करने का निश्चय किया गया।

जनरल कमेटी व प्रबन्धकारिणी कमेटी के पदाधिकारियों व सदस्यों के नामों में परिवर्तन नहीं हुआ। किन्तु श्री श्यामलालजी बांठिया का स्वर्गवास हो जाने से शोक प्रस्ताव पारित कर उनके परिवार को भेजा गया और इनके रिक्त स्थान पर उनके सुपुत्र श्री जिनेन्द्र कुमारजी बांठिया को सदस्य मनोनीत किया गया।

वर्ष 1967-68 में भी संस्था ने अपनी संचालित प्रवृत्तियों के लिये आवश्यक रकम निर्धारित करने के साथ जो महत्वपूर्ण निश्चय किये वह इस प्रकार हैं—

वर्तमान का ध्रोव्य कोष 121000) में वृद्धिवटाव खाते से 4000) लेकर 125000) किया गया।

'जवाहर विचारसार' पुस्तक का पुर्नमुद्रण वृद्धिवटाव खाते से रकम लेकर कराने का निश्चय किया गया।

वर्ष 1968-69 में भी संस्था निर्धारित विधि के अनुसार अपनी प्रवृत्तियां संचालित करती रही।

इस वर्ष में अपने प्रमुख सहयोगी कोषाध्यक्ष सेठ श्री सतीदासजी तातेड़ एवं समाज के अग्रगन्य सज्जन श्री मांगीचन्दजी भंडारी मद्रास व श्री सरूपचन्दजी चोरड़िया जयपुर का स्वर्गवास हो जाने पर संस्था की ओर से शोक प्रस्ताव पारित कर संवेदना प्रकट करने के लिये उनके परिवारों को भेजे गये।

कोषाध्यक्ष के रिक्त स्थान की पूर्ति सर्वसम्मति से श्री मेघराजजी सुखानी को मनोनीत कर की गई। शेष पदाधिकारी व सदस्य पूर्ववत रहे।

वर्ष 1969-70 में संस्था की प्रवृत्तियों के लिये अर्थव्यवस्था करने के उपरान्त श्री साधुमार्गी श्रावक संघ पीपलिया मंडी को स्थानक भवन निर्माण हेतु 2111) तथा श्री बीकानेर स्थानकवासी जैन महिला परिषद् बीकानेर को 7111) वृद्धिवटाव खाते से देने का निर्णय किया गया।

संस्था के संरक्षक सदस्य श्री लहरचन्दजी सेठिया के दिवंगत हो जाने पर शोक प्रस्ताव पारित किया गया एवं रिक्त स्थान पर उनके सुपुत्र श्री सेमचन्दजी सेठिया को मनोनीत किया गया।

इस प्रकार से संस्था के एक दशक (1961-1970) के विवरण की मुख्य-मुख्य बातों का पृथक्-पृथक् निर्देश करने के बाद अब सभी प्रकार की पुनरावृत्तियां न कर एवं प्रवृत्तियों के लिये योग्य अर्थव्यवस्था तथा पदाधिकारियों व सदस्यों के नामों का उल्लेख न कर आगामी दशक (1971-1980 तक) के विशिष्ट प्रसंगों का दिग्दर्शन कराते हैं।

संस्था की ओर से श्री अमरचन्दजी बोथरा के मकान मरोटी सेठिया मोहल्ला बीकानेर में श्री जैन महिला सिलाई प्रशिक्षण केन्द्र स्थापित किया गया। वर्तमान में यह केन्द्र रांगड़ी मोहल्ला स्थित सभा भवन में चल रहा है। महिलायें व बालिकायें अपनी योग्यतानुसार केन्द्र में शिक्षण प्राप्त कर रही हैं।

इसके अतिरिक्त श्री स्थानकवासी जैन महिला परिषद् बीकानेर के पत्र पर विचार कर महिलाओं द्वारा सिलाई प्रशिक्षण केन्द्र चालू किया गया, जिसमें 6 सिलाई मशीनें व 100) प्रतिमाह संस्था की ओर से सहयोग दिया गया। कुछ समय बाद इस केन्द्र के बन्द हो जाने पर मशीनें आदि संस्था द्वारा संचालित प्रशिक्षण केन्द्र में ले आई गई।

इन वर्षों में श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी म. के व्याख्यानों से नल-दयमन्ती चरित्र का संकलन सम्पादन कराकर प्रकाशित किया गया। पाठकों ने इसकी सराहना की और दो संस्करण प्रकाशित हो जाने के बाद भी मांग बने रहने से तृतीय संस्करण प्रकाशित करने की व्यवस्था की जा रही है।

इस दशक में संस्था के निम्नलिखित माननीय सदस्यों के दिवंगत हो जाने पर शोक प्रस्ताव पारित कर उनके पारिवारिक जनों को भेजे गये :—

सर्वश्री माणकचन्दजी डागा (संरक्षक सदस्य) तोलारामजी बांठिया भीनासर, पूनमचन्दजी गोलच्छा।

ध्रौव्यकोष में वृद्धि हो जाने से आय की बढ़ोतरी होने से संस्था की संचालित प्रवृत्तियों के लिये प्रतिवर्ष अधिक रकम की व्यवस्था की गई।

पूर्व दशक के विवरण की संक्षिप्त रूपरेखा का दिग्दर्शन कराने के बाद अब वर्तमान वर्षों (सन् 1980-81 से 1989-90 तक) के विवरण की जानकारी कराते हैं। इन वर्षों में मुद्रित विवरण आय-व्यय पत्रक के साथ माननीय सदस्यों को भेजा जाता रहा है। अतः विशेष कार्यों का ही उल्लेख करेंगे।

श्री साधुमार्गी जैन श्रावक संघ भदेसर की पौषधशाला भवन के निर्माण हेतु 11001) प्रदान किये गये।

श्री साधुमार्गी जैन श्रावक संघ ऊदासर को स्थानक भवन निर्माण के लिये 21000) दिये गये।

श्री साधुमार्गी जैन श्रावक संघ चित्तोड़गढ़ को 5001) का तथा श्री साधुमार्गी जैन श्रावक संघ असावरा को 5001) तथा श्री साधुमार्गी जैन श्रावक संघ जावरा को 5001) का अपने अपने यहां स्थानक निर्माण कराने में संस्था की ओर से सहयोग दिया गया।

ऊदासर श्रीसंघ द्वारा अपने यहां अर्द्धनिर्मित समता भवन के निर्माण में अर्थ सहयोग प्रदान करने हेतु आगत पत्र पर सर्वानुमति से 21000) तथा श्री साधुमार्गी जैन श्रावक संघ कोटा को वहां के निर्माणधीन भवन

में 21000) की सहयोग राशि प्रदान करने का निर्णय किया गया। तदनुसार दोनों संघों को स्वीकृत राशि भिजवाई गई।

दिनांक 24 जुलाई, 1983 तदनुसार वि. सं. 2040 आषाढ़ शुक्ला 15 रविवार की जनरल कमेटी में श्री माणकचन्दजी सेठिया मद्रास के पत्र पर विचार विमर्श करके यह निश्चय किया गया कि वृद्धिबटाव खाते में जमा रकम में से 25000) उठाकर ध्रौव्यकोष में जमा कर लिये जावें। ऐसा करने पर संस्था का ध्रौव्यकोष 125000) से बढ़कर 150000) हो गया।

संस्था द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों में से 'जैनागम तत्त्वदीपिका' का नया संस्करण तथा श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी म. के बीकानेर चातुर्मास के प्रवचनों में से संकलित सम्पादित 'आध्यात्मिक आलोक' व 'आध्यात्मिक वैभव' नामक प्रवचन संग्रहों को एक पुस्तक के रूप, में प्रकाशित करने का निश्चय किया गया।

दिनांक 15-3-84 वि. सं. 2040 चैत कृष्णा 9 रविवार को हुई संस्था की प्रबन्धकारिणी कमेटी में अनुमोदित प्रस्ताव को दिनांक 8 जुलाई 1984 वि. सं. 2041 आषाढ़ शुक्ला 10 रविवार की जनरल कमेटी में प्रस्तुत किया गया। प्रस्ताव की भावना और श्री सुन्दरलालजी तातेड़ के निवेदन पर विचार-परामर्श करते हुए सर्वसम्मति से निर्णय किया गया कि संस्था के अन्तर्गत श्री सतीदास, सुन्दरलाल तातेड़ के नाम से फंड बनाया जावे। इस फंड में श्री तातेड़जी की ओर से प्राप्त धन को स्थायी रखते हुए व्याज से प्राप्त वार्षिक आय को स्वधर्मी सहयोग देने में उपयोग किया जावे। कभी-कदाच व्याज की आय अन्य शुभ कार्यों में उपयोग करने की आवश्यकता महसूस हो तो संस्था की अन्य प्रवृत्तियों में भी उसका उपयोग किया जा सकता है।

इस फंड में श्री सुन्दरलालजी तातेड़ की ओर से 21000) रुपये जमा कराये गये।

संस्था के आजीवन सदस्य श्री भंवरलालजी श्री श्रीमाल तथा श्री कन्हैयालालजी तातेड़ के दिवंगत होने पर शोक प्रस्ताव पारित कर उनके पारिवारिजनों के प्रति संवेदना व्यक्त की गई तथा प्रस्ताव उनके परिवार को भेजे गये।

दिनांक 23 अप्रैल 1987 वि. सं. 2044 वैसाख कृष्णा 10 गुरुवार को संस्था के अध्यक्ष श्रीमान् चम्पालालजी बांठिया का स्वर्गवास होने पर संस्था की ओर से आम सभा का आयोजन किया गया। सभा में अनेक वक्ताओं ने उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए अपनी अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की और अंत में सामूहिक रूप में परिवार के प्रति संवेदना प्रकट करने के लिये शोक प्रस्ताव पारित किया गया। पारित प्रस्ताव उनके पारिवारिक जनों को भेजा गया।

परम श्रद्धेय आचार्य श्री नानालालजी महाराज की आचार्य-पदारोहण रजतजयन्ती वर्ष में विशिष्ट जनोपयोगी कार्यों के लिये 13-7-87 की जनरल कमेटी में 30000) रुपये स्वीकार कर विशिष्ट जनोपयोगी कार्य करने हेतु शासकीय सहयोग से नेत्र-चिकित्सा शिविर लगाने का निश्चय किया था। किन्तु सरकार की ओर से तारीख का निश्चय न हो सकने से शिविर नहीं लग सका।

संस्था के अध्यक्ष पद के रिक्त स्थान पर श्रीमान् जुगराजजी सेठिया को सर्वानुमति से अध्यक्ष निर्वाचित किया गया।

वर्ष 1981-90 तक के दशक में संस्था की ओर से प्रकाशित साहित्य के लिये निम्नलिखित सज्जनों की ओर से आर्थिक—सहयोग प्राप्त हुआ :—

श्रीमती छोटादेवी नाहटा धर्मपत्नी श्री रतनलालजी नाहटा बीकानेर से नल-दमयन्ती भाग 1-2 के लिये।

श्री पानमलजी सेठिया सुपुत्र श्री चम्पालालजी सेठिया बीकानेर से 'गहरे पर्त के हस्ताक्षर' एवं आचार्य श्री नानेश: एक परिचय के लिये।

श्रीमती मनोहरकंवर बाई तातेड़ धर्मपत्नी श्री सुन्दरलालजी तातेड़ बीकानेर की ओर से 'जीवन के सत्य' के लिये।

गुप्त महानुभाव की ओर से 1500) जैनागम तत्वदीपिका के पुर्नमुद्रण के लिये।

श्री सूरजमलजी बोरदिया उदयपुर से 'तत्त्वार्थ सूत्र हिन्दी पद्यानुवाद' के लिये।

उपर्युक्त समग्र विवरण संस्था की स्थापना से लेकर आज तक के व्यवस्थित संचालन, सदस्यों के सहयोग और प्रवृत्तियों की रूपरेखा मात्र है। इससे जाना जा सकता है कि संस्था ने अपनी आर्थिक मर्यादा के अनुसार धर्म व समाज सेवा के लिये प्रशंसनीय कार्य किये हैं। इनके लिये लाखों रुपये खर्च कर भी संस्था का ध्रौव्य-कोष वृद्धिगत होने के साथ सुरक्षित है।

संस्था का स्थापना काल से लेकर वि. सं. 2016 तक जो भी खर्च हुआ है, उसका विवरण पूर्व में प्रकाशित कर चुके हैं। अत: वि. सं. 2016 से वि. सं. 2046 तक के तीस वर्षों की व्यय राशि का यहां उल्लेख करते हैं—

स्वधर्मी सहयोग सहायता	187025.75
धार्मिक शिक्षण	45974.39
महिला सिलाई प्रशिक्षण केन्द्र	66685.09
छात्रवृत्ति	38776.40
अकाल सहायता	2000.00
समता भवन निर्माण	104224.00

इसके साथ व्यवस्था खर्च आदि सम्बन्धी राशि इस प्रकार है—

खुदरा खर्च	2080.06
पोस्टेज खर्च	625.71
वेतन खर्च	20864.80
हिसाब परीक्षण	2794.00
छपाई खर्च	2262.46
पुस्तक खरीद	436.70
वैकुंठी निर्माण	2021.03

इन सब को जोड़ दिया जाय तो मोट 475890.35 खर्च हो चुके हैं।

दिनांक 31.3.1990 तक का आंकड़ा

राशि	उप-राशि	विवरण
1,50,000.00		श्री रिजर्व फंड खाते जमा
38,155.55		श्री वृद्धिवटाव खाते जमा
2,828.55		श्री जैन श्वेताम्बर साधुमार्गी सभा
114.46		नल दमयन्ती प्रथम भाग
2,431.00		श्री साहित्य प्रकाशन खाते
168.54		पुस्तक प्रकाशन खाते
1,16,437.34		श्री फंडखाते जमा (धणीवार)
	6,532.73	जीवदया खाते
	13,174.98	श्रीमती पानाबाई बेवा श्री भींवराज जी बछावत
	14,321.49	चलावा फंड
	9,480.79	श्री दीक्षा फंड
	19,138.35	श्रीमती छोटा देवी बेवा श्री रतनलालजी नाहटा
	6,894.80	आध्यात्मिक आलोक वैभव पुस्तक
	2,647.45	चीलो धर्मशाला फंड
	9,000.24	श्री पानमलजी सेठिया सुपुत्र चंपालाल जी
	26,560.38	श्री सतीदास जी सुन्दरलाल जी तातेड़
	8,686.13	श्रीमती मनोहरकंवर पत्नी श्री सुन्दरलाल जी तातेड़
	1,16,437.34	
3,10,135.44		

राशि	विवरण
723.25	श्री महिला सिलाई प्रशिक्षण (मशीन व खुदरा सामान)
89,812.25	बैंक में F.D.R. रसीदें
1,016.07	नल दमयन्ती पुस्तक दूसरा भाग
4,171.01	गहरी पर्त के हस्ताक्षर
5,535.18	जीवन के सत्य
849.19	तत्त्वार्थ सूत्र
2,850.90	जैनागम तत्त्व दीपिका
1,14,587.69	श्री शरवतचन्दजी चौरड़िया, मद्रास
86,897.00	श्रीभरतकुमारजी चौरड़िया, मद्रास
3,394.13	स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एण्ड जयपुर सिटी ब्रान्च सेविंग एकाउण्ट
298.07	श्री पोते बाकी
3,10,135.44	

□

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर
के पदाधिकारियों के कार्यकाल
की विवरणिका

अवधि	अध्यक्ष	मंत्री	कोषाध्यक्ष
12-9-27 से 21-7-31	श्री भैरोंदान जी सेठिया	श्री जेठमल जी सेठिया	श्री जेठमल जी सेठिया
22-7-31 से 5-5-32	श्री भैरोंदान जी सेठिया	श्री सतीदास जी तातेड़	श्री सतीदास जी तातेड़
5-5-32 से 31-3-34	श्री भैरोंदान जी सेठिया	श्री सतीदास जी तातेड़	श्री सतीदास जी तातेड़
1-4-34 से 7-8-34	श्री मगनमल जी कोठारी	श्री हीरालाल जी सिंघी	श्री सतीदास जी तातेड़
8-8-34 से 5-9-46	श्री मगनमल जी कोठारी	श्री लहरचंद जी सेठिया	श्री माणकचंदजी सेठिया
6-9-46 से 14-4-51	श्री बुधसिंह जी बैद	श्री भीखमचंद जी भंसाली	श्री सतीदास जी तातेड़
15-4-51 से 31-3-57	श्री चम्पालाल जी बांठिया	श्री भीखमचंद जी भंसाली	श्री सतीदास जी तातेड़
4-57 से 3-62	श्री चम्पालाल जी बांठिया	श्री भीखमचंद जी भंसाली	श्री सतीदास जी तातेड़
62–63 से 67–68	श्री चम्पालाल जी बांठिया	श्री सुन्दरलाल जी तातेड़	श्री सतीदास जी तातेड़
68–69 से 86–87	श्री चम्पालाल जी बांठिया	श्री सुन्दरलाल जी तातेड़	श्री मेघराज जी सुखानी
87–88 से 89–90	श्री जुगराज जी सेठिया	श्री सुन्दरलाल जी तातेड़	श्री मेघराज जी सुखानी

□

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

संस्थापक सदस्य

भैरूंदानजी सेठिया

सतीदासजी तातेड़

केशरीचन्दजी डागा

वादरमलजी वांठिया

कानीरामजी वांठिया

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर
के पदाधिकारियों के कार्यकाल
की विवरणिका

अवधि	अध्यक्ष	मंत्री	कोषाध्यक्ष
12-9-27 से 21-7-31	श्री भैरोंदान जी सेठिया	श्री जेठमल जी सेठिया	श्री जेठमल जी सेठिया
22-7-31 से 5-5-32	श्री भैरोंदान जी सेठिया	श्री सतीदास जी तातेड़	श्री सतीदास जी तातेड़
5-5-32 से 31-3-34	श्री भैरोंदान जी सेठिया	श्री सतीदास जी तातेड़	श्री सतीदास जी तातेड़
1-4-34 से 7-8-34	श्री मगनमल जी कोठारी	श्री हीरालाल जी सिंघी	श्री सतीदास जी तातेड़
8-8-34 से 5-9-46	श्री मगनमल जी कोठारी	श्री लहरचंद जी सेठिया	श्री माणकचंदजी सेठिया
6-9-46 से 14-4-51	श्री बुधसिंह जी वैद	श्री भीखमचंद जी भंसाली	श्री सतीदास जी तातेड़
15-4-51 से 31-3-57	श्री चम्पालाल जी बांठिया	श्री भीखमचंद जी भंसाली	श्री सतीदास जी तातेड़
4-57 से 3-62	श्री चम्पालाल जी बांठिया	श्री भीखमचंद जी भंसाली	श्री सतीदास जी तातेड़
62–63 से 67–68	श्री चम्पालाल जी बांठिया	श्री सुन्दरलाल जी तातेड़	श्री सतीदास जी तातेड़
68–69 से 86–87	श्री चम्पालाल जी बांठिया	श्री सुन्दरलाल जी तातेड़	श्री मेघराज जी सुखानी
87–88 से 89–90	श्री जुगराज जी सेठिया	श्री सुन्दरलाल जी तातेड़	श्री मेघराज जी सुखानी

□

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

संस्थापक सदस्य

भैरूंदानजी सेठिया

सतीदासजी तातेड़

केशरीचन्दजी डागा

वादरमलजी बांठिया

कानीरामजी बांठिया

मगनमलजी कोठारी

जेठमलजी सेठिया

चम्पालालजी बांठिया

गोविन्दरामजी भन्साली

नेमचन्दजी सुखलेचा

भैरूंदानजी गोलछा

अजीतमलजी पारख
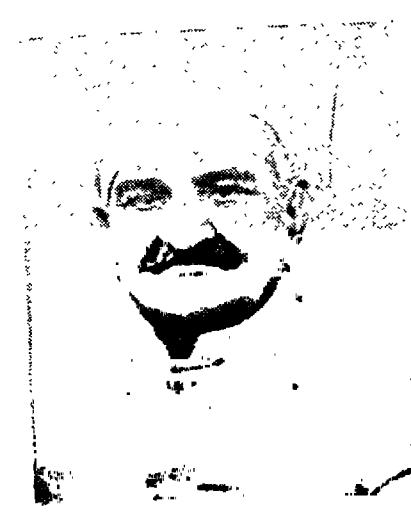
आनन्दमलजी श्री श्रीमाल

मेहता बुद्धसिंगजी बैद
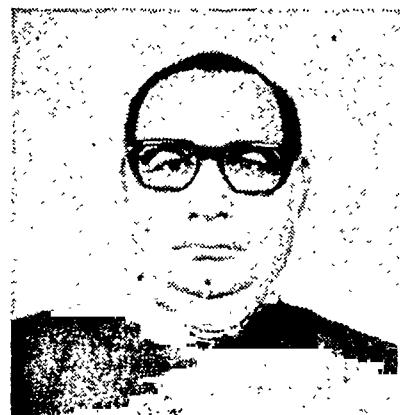
मगनमलजी कोठारी

गोविन्दरामजी भन्साली

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

सदस्य
हीरक जयन्ती
समारोह समिति

केसरीचन्दजी सेठिया

उत्तमचन्दजी लोढ़ा

खेमचन्दजी सेठिया
(संयोजक)

प्रकाशचन्दजी पारख

सुमतिलालजी बांठिया
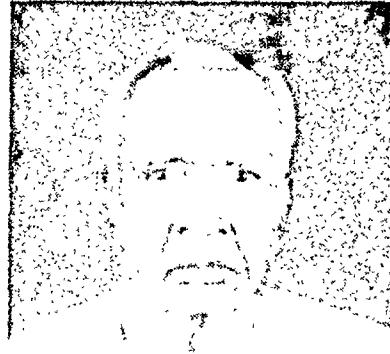
श्री श्वेताम्वर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, वीकानेर

वर्तमान पदाधिकारी

जुगराजजी सेठिया
(अध्यक्ष)

सुन्दरलालजी तातेड़
(मन्त्री)

मेघराजजी सुखाणी
(कोषाध्यक्ष)
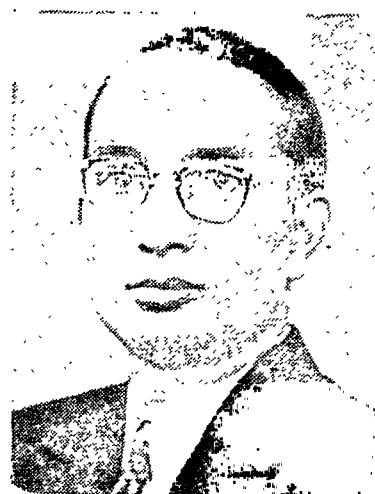
श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर

सदस्य
हीरक जयन्ती
समारोह समिति

केसरीचन्दजी सेठिया

उत्तमचन्दजी लोढ़ा

खेमचन्दजी सेठिया
(संयोजक)

प्रकाशचन्दजी पारख

सुमतिलालजी बांठिया

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, वीकानेर

भीखणचन्दजी भन्साली

संस्था के वर्तमान सदस्य

कन्हैयालालजी मालु

माणकचन्दजी सेठिया

केसरीचन्दजी सेठिया

मोहनलालजी सेठिया

पानमलजी सेठिया

तोलारामजी लोढ़ा

भंवरलालजी बड़ेर

सोहनलालजी गोलछा

रामलालजी बांठिया

सूरजमलजी डागा

इन्द्रचन्दजी डागा

अशोककुमारजी श्री श्रीमाल

नथमलजी तातेड़

सम्पतलालजी तातेड़

सेवा, कर्मठता एवं उदारता के प्रतीक–स्व. श्री चम्पालाल जी बांठिया

□

बहुमुखी प्रतिभा के धनी, दानवीर एवं जन श्रद्धा के केन्द्र श्री चम्पालालजी बांठिया पार्थिव रूप में आज विद्यमान नहीं हैं परन्तु सामाजिक, धार्मिक, व्यावसायिक, औद्योगिक एवं राष्ट्रीय क्षेत्र में उनका योगदान अद्वितीय रहा है। उनकी कार्यकुशलता, दूरदर्शिता एवं समाज के प्रति समर्पण-भावना अद्वितीय रही है।

दीर्घ कर्मठ जीवन

मिगसर सुदी 15 संवत् 1959 तदनुसार 15 दिसम्बर, 1902 को श्रेष्ठी श्री हमीरमलजी बांठिया के पुत्र रूप में जन्म लेकर आपने 85 वर्ष की आयु तक विविध कार्य क्षेत्रों में अमिट छाप छोड़ी। वे समग्र जैन समाज के पथ प्रदर्शक एवं अग्रणी तो थे ही, जन सामान्य से भी जीवन पर्यन्त जुड़े रहे।

सामाजिक क्षेत्र की उपलब्धियां

आपने बीकानेर राज्य एसेम्बली के सदस्य, भीनासर नगरपालिका के चेयरमैन एवं बीकानेर स्टेट ट्रेड एण्ड इन्डस्ट्रीज एसोसियेशन के अध्यक्ष रूप में समाज की अविस्मरणीय सेवा की। जवाहर हाई स्कूल, बालिका माध्यमिक विद्यालय, मुरलीमनोहर गौशाला, महिला सिलाई प्रशिक्षण केन्द्र आदि स्थापित कर आपने समाज में नई चेतना जाग्रत की और दो कुओं का निर्माण कराकर जनता को मीठा पानी भी उपलब्ध कराया। आपकी दानवीरता से प्रभावित होकर तत्कालीन महाराजा गंगासिंहजी ने इन्हें सम्मान स्वरूप 'चांदी की छड़ी' भेंट की थी। आपने वर्षों तक अवैतनिक मजिस्ट्रेट रहकर निष्पक्ष न्याय का उदाहरण प्रस्तुत किया तो अनेक उद्योगों में डाइरेक्टर रूप में रहते हुए नवीन आयाम दिये।

धार्मिक क्षेत्र में अग्रगण्य

ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना के लिए आपने 'जैन जवाहर विद्यापीठ' का निर्माण कराया एवं 'सेठ हमीरमलजी बांठिया पौषधशाला', बांठिया गेस्ट हाऊस, चम्पालाल बांठिया धर्मार्थ ट्रस्ट की स्थापना भी की। तीन दशक तक उन्होंने जवाहर विद्यापीठ का कार्यभार सम्भाला। यहां के छात्रावास से निकले छात्र आज अनेक महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्यरत हैं, जिन्हें बांठिया जी की प्रेरणा और पथ प्रदर्शन रूप प्रसाद मिला।

महान् क्रान्तिकारी ज्योतिधर जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा. के संवत् 1998-99 के भीनासर चातुर्मास एवं वृहद् साधु-सम्मेलन में आपने सफल भूमिका निभाई। आचार्य श्री की साहित्यिक निधि को कालजयी बनाने और इसे जवाहर किरणावली रूप में प्रकाशित प्रसारित कराकर आपने युगबोध देने की दिशा में महान् कार्य किया है। 'सादड़ी सम्मेलन' में आप स्थानकवासी जैन कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष चुने गये। आपकी

धार्मिक क्षेत्र में की गई सेवाओं का मूल्यांकन कर विभिन्न संस्थाओं ने 'सम्मान पत्र' एवं अभिनन्दन पत्र भेंटकर सम्मानित किया। टाइम्स ऑफ इन्डिया ने अपने सन् 1954-55 के संदर्भ ग्रन्थ में आपकी सेवाओं और प्रशस्त जीवन को रेखांकित किया तथा देश-विदेश के अनेक मनीषियों ने आपकी प्रगतिशीलता की मुक्तकंठ से प्रशंसा की थी। श्रीमान् बांठिया जी हितकारिणी संस्था से गत 37 वर्षों से अध्यक्ष रूप में सम्बद्ध रहे हैं।

स्मृति शेष बांठिया जी

आपने अपने दीर्घ जीवन में अनेक संस्थाओं का दान देकर उनका कार्य-क्षेत्र में सहायता दी। यही नहीं, आतिथ्य सेवा, स्वधर्मी सहयोग एवं जन साधारण के असहाय लोगों की सहायता में भी निरन्तर अनूठी छाप छोड़ी है। दिनांक 1 अप्रैल, 1987 (चैत्र शुक्ला 3 सं. 2044) को आपका स्वर्गवास हो गया। यह समाज के लिए अपूरणीय क्षति है। उनका यशस्वी जीवन सदैव जन-मन को अनुप्रेरित करता रहेगा।

□

क्षमापना

विश्व के समस्त प्राणियों पर निर्वैरभाव रखना और विश्वमैत्री-भावना विकसित करना क्षमापना का महान् आदर्श और उद्देश्य है। मनुष्य के साथ मनुष्य का सम्बन्ध अधिक रहता है अतएव मनुष्यों के प्रति निर्वैरवृत्ति धारण करने के लिए सर्वप्रथम अपने घर के लोगों के साथ अगर उनके द्वारा कलुषता उत्पन्न हुई हो या उनके चित्त में कलुषता हुई हो तो क्षमा का आदान-प्रदान करके विश्वमैत्री का शुभ समारम्भ करना चाहिए।

—श्रीमद् जवाराचार्य

(जवाहर-विचारसार)

सादगी, सामंजस्य एवं समाजसेवा की त्रिवेणी–श्री कन्हैयालालजी मालू

□

श्री कन्हैयालालजी मालू का जन्म कलकत्ता में मिति वैशाख सुदी 8 संवत् 1976 तदनुसार दिनांक 8 मई, 1919 को हुआ। श्रीमान् रतनलालजी एवं श्रीमती गुलाबदेवी मालू के सुपुत्र श्री मालू जी ने प्राथमिक विद्यालय से वाणिका की शिक्षा ही पाई परन्तु व्यावसायिक, सामाजिक एवं धार्मिक क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण मंजिलों तक पहुंच गये। सत्तर बसन्त के पार भी आज युवकों सा उत्साह एवं लगन के धनी हैं।

अपने बहनोई श्रीमान् अजीतमलजी पारख की छत्रछाया में मात्र 14 वर्ष की आयु में व्यवसाय क्षेत्र में प्रवेश किया था। उनके स्नेह, मार्गदर्शन एवं अनुभव का सम्बल पाकर आपने व्यावसायिक क्षेत्र में आशातीत प्रगति की है और आज भी निरन्तर ऊर्ध्वमुखी पथानुगामी हैं।

विक्रम सं. 2010 में आचार्य श्री गणेशीलालजी म.सा. का बीकानेर में चातुर्मास हुआ था। उनके साथ वर्तमान आचार्य प्रवर श्री नानालालजी म.सा. भी थे। आचार्य गणेशी के व्याख्यानों का आप पर विशेष प्रभाव पड़ा और श्री नानेश की प्रेरणा से आपने धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। बुजुर्गों के आशीर्वाद व नवयुवकों के सहयोग से इनके उत्साह में वृद्धि होती गई।

आपका स्थाई निवास कलकत्ता हो जाने पर भी इस क्षेत्र में आप गतिमान रहे। समाज-सेवा का जो प्रण आपने किया निरन्तर उसमें प्रवृत्त रहे। सं. 2012 से आपने श्री श्वे. स्थानकवासी जैनसभा, कलकत्ता के माध्यम से धार्मिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। आप इस अग्रणी संस्था के गत 27 वर्षों से ट्रस्टी हैं एवं तीन वर्षों तक सभापति का दायित्व भी सफलतापूर्वक निभाया। यह अतिशयोक्ति नहीं कि आपके दिशा-निर्देशन में जैनसभा ने चहुंमुखी विकास किया है। आपकी सेवाओं के परिणाम स्वरूप कलकत्ता समाज ने आपका अभिनंदन 'मान पत्र' भेंट करके किया।

उल्लेखनीय है कि शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद भी आपका सहयोग कलकत्ता तथा बीकानेर के समाज को मिल रहा है। समाज में किसी विषय पर मतभेद या विवाद होने पर आपने सदैव मेलमिलाप की भूमिका निभाई है। कड़ी बनकर जुड़ने जुड़ाने की आपकी विशेषता है। प्रतिकूल परिस्थितियों से न घबराकर श्री मालू जी में उनसे संघर्ष करने की अपूर्व क्षमता है। आप श्री हितकारिणी संस्था के कार्य में भी रुचि लेते रहते हैं। आपकी आकांक्षा निरंतर सक्रिय रहकर सामाजिक कार्य करने की है।

आपकी यह भावना प्रशंसनीय व प्रेरक है।

□

संघनिष्ठ, मूकसेवी, कर्मठ कार्यकर्त्ता, सुश्रावक श्री सुन्दरलाल जी तातेड़

□

उदय नागोरी एम. ए. (दर्शन), जै. सि. प्रभाकर

श्री सुन्दरलाल जी तातेड़ का जन्म बीकानेर में मिति पौष वदी 8 सं. 1968 को हुआ। आपके पिताजी श्रीमान् सतीदास जी सा. तातेड़ समाज के अग्रणी, अपूर्व समाजसेवी एवं त्यागी गृहस्थ थे, फलस्वरूप उनकी छत्र-छाया में आपने सर्व प्रकार से अनुभव प्राप्त किये हैं। धार्मिक विचारों से ओतप्रोत मातुश्री श्रीमती छगनीबाई से इन्हें संस्कारों की विरासत मिली है। आपने स्कूली शिक्षा के नाम पर वाणिका ज्ञान ही प्राप्त किया परन्तु अपने व्यावहारिक ज्ञान, स्वाध्याय एवं दूरदर्शिता से समुचित ज्ञानार्जन किया है।

सं. 2012 में आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा. का बीकानेर चातुर्मास हुआ तब वर्तमान आचार्य श्री नानेश के दर्शन एवं सत्संग से प्रेरित होकर आपने सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश किया था। तदनन्तर आप निरन्तर समर्पित भाव से समाज की निःस्वार्थ सेवा करते आ रहे हैं। अपने पितृश्री एवं आचार्य श्री नानेश के अतिरिक्त आपने श्री जुगराज जी सेठिया से भी प्रेरणा पाई है। समाज की महत्ती सेवा करना ही आपका लक्ष्य रहा है एवं प्रतिक्षण समाज हित में चिन्तन कर समर्पित रहना जीवन का पाथेय।

संघनिष्ठा में आप आदर्श सुश्रावक हैं। अनेक संत-सतियां जी की सेवा का अवसर इन्हें प्राप्त हुआ है। अनवरत स्वाध्याय एवं संत मुनिराजों के सान्निध्य से आपने जैन सिद्धान्तों की गूढ़ जानकारी अर्जित की है। जैन शास्त्रों में आपकी गहन पैठ रही है तथा आगम ग्रन्थों का सूक्ष्मता से अध्ययन करना इनकी एक विचक्षण प्रतिभा है। इन्हें आचार्यत्रय-श्रद्धेय श्री जवाहरलाल जी, गणेशीलाल जी एवं नानेश की अनुपम सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। फलस्वरूप आत्मोन्नति पथ में निरन्तर अग्रसर रहते हुए चिन्तन मनन में लगे रहते हैं।

अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ की स्थापना तथा विकास में आपकी मुख्य एवं महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। आपने तीन वर्ष (72-75) तक उपाध्यक्ष एवं ग्यारह वर्ष तक (63-72 एवं 78-80) सहमन्त्री रहकर संघ की जो सेवा की है, सदा स्मरणीय रहेगी। सम्प्रति आप साधुमार्गी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड के संयोजक हैं।

सं. 2012 के वृहद् साधु सम्मेलन में आपने सन्तों का सान्निध्य पाकर सक्रिय भूमिका निभाई थी। आज भी सामाजिक गतिविधियों एवं अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ से सम्बन्धित अभिलेखों के संरक्षण में आप रुचि रखते हैं

श्री श्वे. साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था के आप 62-63 से मंत्री हैं और आपके कार्यकाल में संस्था निरन्तर प्रगति कर रही है। संस्था के विधानानुसार आप ध्रुव फंड को स्थायी रखकर अर्जित आय से विविध प्रवृत्तियों के माध्यम से समाज की सेवा कर रहे हैं।

आपकी मुख्य भावना संगठन के प्रति निष्ठा है। युवकों को भी इसी दिशा में प्रयत्नशील रहने की प्रेरणा देते हैं। फिर भी आपको किसी पद या सम्मान की अपेक्षा नहीं है।

समाज को ऐसे मूकसेवी एवं कर्मठ कार्यकर्त्ता पर गर्व है। इनके नेतृत्व में समाज को नई दृष्टि मिले यही आशा है।

□

सेठिया जैन ग्रन्थालय
मरोठी मोहल्ला, बीकानेर

आत्म-बल की श्रेष्ठता

आत्म-बल में अद्‌भुत शक्ति है। इस बल के सामने संसार का कोई भी बल नहीं टिक सकता। इसके विपरीत जिसमें आत्म-बल का सर्वथा अभाव है वह अन्यान्य बलों का अवलम्बन करके भी कृत-कार्य नहीं हो सकता। मृत्यु के समय अनेक बया अधिकांश लोग दुःख का अनुभव करते हैं। मृत्यु का घोर अन्धकार इन्हें विह्वल बना देता है। बड़े-बड़े शूरवीर योद्धा, जो समुद्र के वृक्षःस्थल पर क्रीड़ा करते हैं, विशाल जल-राशि को चीरकर अपना मार्ग बनाते हैं और देवों की भाँति आकाश में विहार करते हैं, जिनके पराक्रम से संसार थर्राता है, वे भी मृत्यु को समीप देखकर कातर बन जाते हैं, दीन हो जाते हैं। लेकिन जो महात्मा आत्मबली होते हैं वे मृत्यु का आलिंगन करते समय रंचमात्र भी खेद नही करते। मृत्यु उनके लिए सघन अन्धकार नहीं है, वरन् स्वर्ग-अपवर्ग की ओर ले जाने वाले देवदूत के समान प्रतीत होती है।

—श्रीमद् जवाहराचार्य
(जवाहर-विचारसार)

श्रावक रत्न, संघनिष्ठ, समाज सेवी, शिक्षाविद्
श्रीमान् जुगराज जी सा. सेठिया

□

समाजरत्न जुगराज जी सा. सेठिया का जन्म बीकानेर में दिनांक 29 फरवरी 1913 को हुआ। इनके पिताजी श्रीमान् भैरोंदान जी सेठिया दानवीरता के प्रतीक थे एवं धर्मधुरीण भी। धार्मिक एवं व्यावहारिक विरासत इन्हें अपनी माताजी श्रीमती धन्ना देवी से मिली।

इन्होंने व्यावहारिक शिक्षा मैट्रिक तक ही पाई परन्तु स्वाध्याय, लगन एवं अध्यवसाय के बल पर समाज सेवा, व्यवसाय, शैक्षणिक एवं औद्योगिक क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति की है। कुशाग्रबुद्धि, प्रतिभा एवं कर्मठता के धनी सेठियाजी ने ऊन के व्यवसाय में तो कीर्तिमानीय सफलता पाई ही है, रुई के व्यवसाय एवं आयात-निर्यात क्षेत्र में भी अनूठी छाप छोड़ी है।

सेठियाजी को सेवा का व्रत विरासत में मिला है। अपने पितृश्री द्वारा स्थापित सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था का आप पांच दशक से भी अधिक समय से संचालन कर रहे हैं। संस्था ने सेवा, शिक्षा एवं धर्म की त्रिवेणी प्रवाहित की है। अब तक हजारों छात्रों को शिक्षा दान देकर संस्था ने जीवन निर्माण की दिशा में महत्वपूर्ण कार्य किया है। संस्था के प्रकाशन स्तरीय एवं प्रामाणिक माने जाते रहे है। आपने सामाजिक कार्यों में सर्वश्री छगनलाल जी मूथा, सतीदास जी तातेड़, सरदारमल जी कांकरिया एवं सुन्दरलाल जी तातेड़ को भी प्रेरणा स्रोत माना है और इनसे बहुत कुछ सीखा है।

आप समाज के अग्रणी एवं सेनानी हैं। इनके नेतृत्व में समाज की चहुंमुखी प्रगति हुई है। अ. भा. साधुमार्गी जैन संघ के तो आप प्रमुख स्तम्भ रूप रहे हैं। दो वर्ष (80 से 82) तक अध्यक्ष एवं 12 वर्ष तक (63 से 75) मंत्री रूप में पदाधिकारी रहते हुए भी स्वयं को संघ का साधारण सेवक ही माना है। संघ की स्थापना के समय से लेकर अब तक निरन्तर इसकी प्रगति के लिए प्रयत्नशील एवं गतिशील रहे हैं। वर्षों से संघ के मुखपत्र श्रमणोपासक के सम्पादक-मण्डल में रहकर आप सेवा कर रहे हैं।

77 वसन्त के पार भी आप में उत्साह एवं जीवट है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी आप अडिग रहते हैं और उन्हें अपने पर हावी नहीं होने देते। फलस्वरूप सफलता को चरण चूमना ही पड़ता है। आप All India Wool Federation के उपाध्यक्ष रहे हैं। बीकानेर ऊलट्रैडर्स के सचिव व तदनन्तर अध्यक्ष हैं। B. J. S. Rampuria Jain College के सचिव हैं। आपके सद् प्रयत्नों से ही कॉलेज में अनेक पाठ्यक्रम चल रहे हैं।

सम्प्रति आप श्री जैन पाठशाला सभा की कार्यकारिणी के सदस्य, साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था के के अध्यक्ष एवं School of Management and Business Administration तथा अगरचन्द भैरोंदान सेठिया जैन पारमार्थिक संस्था के मंत्री हैं।

सेठिया जी व्यक्ति नहीं संस्था हैं। समाज में जागृति का सन्देश फैलाकर सर्वतोमुखी विकास ही इनका ध्येय रहा है। मितभाषी, विशाल हृदय के धनी, धर्मपरायण सेठिया जी ने धार्मिक तत्वों का सूक्ष्मता से अध्ययन किया है। आज भी पत्र-पत्रिकाएं, आध्यात्मिक ग्रन्थ एवं जैन शास्त्रों का स्वाध्याय करना आपका नियमित दैनिक कार्य है। लगभग एक दशक से आपने व्यवसाय एवं उद्योग से निवृत्ति ले रखी है।

आपके आदर्शों पर चलकर समाज एवं संस्थाएं निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर होती रहेगी, यही विश्वास है।

□

—उदय नागोरी

सच्चा सुख

एक व्यक्ति जब तक अपने ही सुख को सुख मानता रहेगा, जब तक उसमें दूसरे के दुःख को अपना दुःख मानने की संवेदना जागृत न होगी, तब तक उसके जीवन का विकास नहीं हो सकता। उसके जीवन का धरातल ऊँचा नहीं उठ सकता। अवतारों और तीर्थंकारों ने दूसरों के सुख को ही अपना सुख माना था। इसी कारण वे अपना चरम विकास करने में समर्थ हुए।

—श्रीमद् जवाहराचार्य
(जवाहर-विचारसार)

श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था, बीकानेर के पदाधिकारी एवं सदस्य
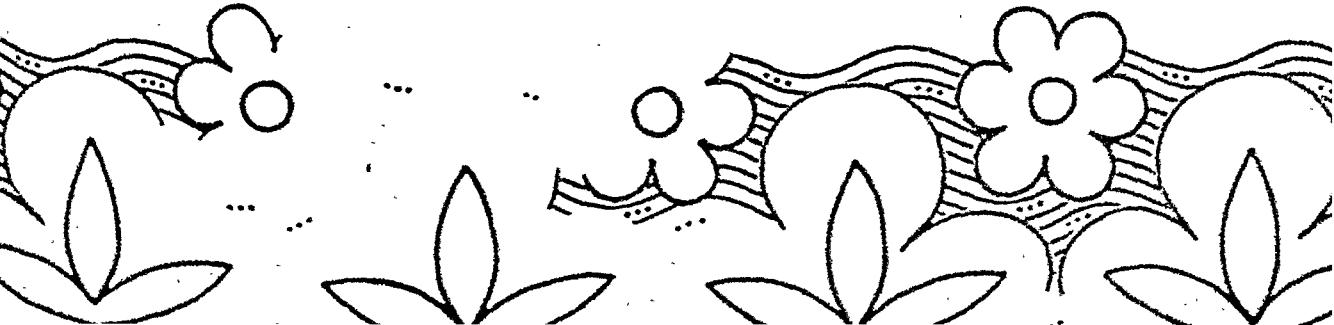
1. श्री जुगराज जी सेठिया (अध्यक्ष)
2. श्री सुन्दरलाल जी तातेड़ (मंत्री)
3. श्री मेघराज जी सुखाणी (कोषाध्यक्ष)

सदस्यगण

1. सर्वश्री खेमचन्द जी सेठिया
2. माणकचन्द जी सेठिया
3. केशरीचन्द जी सेठिया
4. मोहनलाल जी सेठिया
5. भंवरलाल जी बडेर
6. भैरूंदान जी बांठिया
7. जिनेन्द्र कुमार जी बांठिया
8. रामलाल जी बांठिया
9. तोलाराम जी लोढ़ा
10. सूरजमल जी डागा
11. इन्द्र चन्द जी डागा
12. अशोक कुमार जी श्री श्रीमाल
13. प्रकाश चन्द जी पारख
14. केशरीचन्द जी सेठिया आत्मज श्री कुन्दनमल जी
15. नथमल जी तातेड़
16. सोहनलाल जी गोलछा
17. भीखमचन्द जी भंसाली
18. हंसराज जी सुखलेचा
19. कन्हैया लाल जी मालू
20. उत्तम चन्द जी लोढ़ा
21. पानमल जी सेठिया आत्मज श्री चम्पा लाल जी
22. सम्पत लाल जी तातेड़
23. सुमति कुमार जी बांठिया

□

प्रवचन

वीर संघ

□

आचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा.

क्रान्तदर्शी, युग प्रवर्तक ज्योतिर्धर जैनाचार्य श्री जवाहरलाल जी म. सा. ने करीव 60 वर्ष पूर्व एक महत्त्वाकांक्षी योजना प्रस्तुत की थी कि श्रमण वर्ग व श्रावक वर्ग के मध्य एक कड़ी और आवश्यक है जो जैन धर्म दर्शन के प्रचार-प्रसार से जुड़े। समाज सेवा एवं धर्म-प्रभावना के लिए इस योजना के क्रियान्वयन की आज युगीन आवश्यकता है।

आज सामाजिक लेख लिखने, वाद-विवाद करने, खंडन-मंडन करने और इसी प्रकार समाज-सुधार करने का भार साधुओं पर डाल दिया गया है। समाज-सुधार करने का कार्य दूसरा कोई वर्ग अपने हाथ में नहीं ले रहा है। अतएव यह काम भी कई एक साधुओं को अपने हाथ में लेना पड़ा है। इसलिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में साधुओं द्वारा ऐसे-ऐसे काम हो जाते हैं जो साधुता के लिए शोभास्पद नहीं कहे जा सकते।

यदि समाज-सुधार का काम साधुवर्ग अपने ऊपर नहीं लेता तो समाज विगड़ता है और जो समाज लौकिक व्यवहार में ही विगड़ा हुआ होगा तो उसमें धर्म की स्थिरता किस प्रकार रह सकेगी? व्यवहार से गया—गुजरा समाज धर्म की मर्यादा को कैसे कायम रख सकेगा? इस दृष्टि से समाज-सुधार का प्रश्न भी उपेक्षणीय नहीं है।

साधुवर्ग पर जव समाज-सुधार का भार भी होगा तव उनके चारित्र्य की नियम—परम्परा में वाधा पहुंचने से चारित्र्य में न्यूनता आ जाना स्वाभाविक है। अतएव साधु—वर्ग के ऊपर समाज-सुधार का वोझ न होना ही उत्तम है। साधुओं का अपना एक अलग कार्यक्षेत्र है। उससे वाहर निकल कर भिन्न क्षेत्र में जाना योग्य नहीं है। उनका कार्यक्षेत्र अत्यन्त विस्तृत और महत्त्वपूर्ण है।

अव प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ऐसा कौन-सा उपाय है, जिससे समाज-सुधार का आवश्यक और उपयोगी काम भी हो सके और साधुओं को समाज-सुधार में पड़ना न पड़े?

हमारे समाज में मुख्य दो वर्ग हैं—साधुवर्ग और श्रावकवर्ग। साधुवर्ग पर उक्त वोझ पड़ने मे क्या हानियाँ हो सकती हैं, यह वात सामान्य रूप से मैं वतला चुका हूं। रहा श्रावक-वर्ग, सो इसी वर्ग को समाज-सुधार की प्रवृत्ति करनी चाहिए। मगर हमारा श्रावक-वर्ग दुनियादारी के पचड़ों में इतना अधिक फंसा रहता है और उसमें शिक्षा का भी इतना अभाव है कि वह समाज-सुधार की प्रवृत्ति को यथावत् संचालित नहीं कर सकता। श्रावकों में धर्म-सम्वन्धी ज्ञान भी इतना पर्याप्त नहीं है, जिससे वे धर्म का लक्ष्य रखकर, धर्म-मर्यादा को अक्षुण्ण वनाए रख कर, तदनुकूल समाज-सुधार कर सकें। कदाचित् कोई विद्वान् श्रावक मिलता भी है तो उसमें

श्रावक के योग्य आदर्श चरित्र और कर्त्तव्यनिष्ठा की भावना पर्याप्त रूप में नहीं पाई जाती। वह गृहस्थी के पचड़ों में पड़ा हुआ होता है; अतएव उसकी आवश्यकताएँ प्रायः अन्य सामान्य श्रावकों के समान ही होती हैं। ऐसी स्थिति में वह अर्थ के धरातल से ऊँचा नहीं उठ पाता और व्यक्ति अर्थ के धरातल से ऊपर नहीं उठा है, उसमें निस्पृह, निरपेक्ष भाव के साथ समाज-सुधार के आदर्श कार्य को करने की पूर्ण योग्यता नहीं आती! उसे अपनी आवश्यकताएं पूर्ण करने के लिए श्रीमानों की ओर ताकना पड़ता है, उनके समाज-हित-विरोधी कार्यों को सहन करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त त्याग की मात्रा अधिक न होने से समाज में उसका पर्याप्त प्रभाव भी नहीं रहता। इस स्थिति में किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए जिससे समाज-सुधार के कार्य में रुकावट न आवे और साधुओं को भी इस कार्य से अलहदा रखा जा सके? आज यही प्रश्न हमारे सामने उपस्थित है और उसे हल करना अत्यावश्यक है।

मेरी सम्मत्ति के अनुसार इस समस्या का हल ऐसे तीसरे वर्ग की स्थापना करने से ही हो सकता है जो साधुओं और श्रावकों के मध्य का हो। यह वर्ग न तो साधुओं में ही परिगणित किया जाय और न गृह-कार्य करने वाले साधारण श्रावकों के मध्य का हो। इस वर्ग में वे व्यक्ति ही समाविष्ट किये जावें जो ब्रह्मचर्य का अनिवार्य रूप से पालन करें और अकिंचन् हों अर्थात् अपने लिए धन का संग्रह न करें। वे लोग समाज की साक्षी से, धर्माचार्य के समक्ष इन दोनों व्रतों को ग्रहण करें। इस प्रकार के तीसरे त्यागी श्रावक-वर्ग से समाज-सुधार की समस्या भी हल हो जायगी और धर्म का भी विशेष प्रचार हो सकेगा। साथ ही निर्ग्रन्थ वर्ग भी दूषित होने से बच जायगा।

इस तीसरे वर्ग से समाज-सुधार के अतिरिक्त धर्म को क्या लाभ पहुंचेगा, यह बात संक्षेप में बतला देना आवश्यक है।

मान लीजिए कोई व्यक्ति धर्म के विषय में लिखित उत्तर चाहता है। साधु अपनी मर्यादा के विरुद्ध किसी को कुछ लिख कर नहीं दे सकता। ऐसी स्थिति में लिखित उत्तर न देने के कारण धर्म पर आक्षेप रह जाता है। अगर यह तीसरा वर्ग स्थापित कर लिया जाए तो वह लिखित उत्तर भी दे सकेगा।

इसी प्रकार अगर अमेरिका या अन्य किसी विदेश में सर्व धर्म-सम्मेलन होता है; वहां सभी धर्मों के अनुयायी अपने अपने धर्म की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करते हैं। ऐसे सम्मेलनों में मुनि सम्मिलित नहीं हो सकते; अतएव धर्म-प्रभावना का कार्य रुक जाता है। यह तीसरा वर्ग ऐसे-ऐसे अवसरों पर उपस्थित होकर जैनधर्म की वास्तविक उत्तमता का निरूपण करके धर्म की बहुत कुछ सेवा कर सकता है। आजकल ऐसे सम्मेलनों में बहुधा जैन-धर्म के प्रतिनिधि की अनुपस्थिति रहती है और इससे जैन-धर्म के विषय में इतर सहानुभूतिशील व्यक्तियों में भी उतना उच्च विचार नहीं उत्पन्न हो पाता। वे जैन-धर्म के गरिमा-ज्ञान से वंचित रहते हैं। तीसरा वर्ग ऐसे सभी अवसरों पर उपयोगी होगा। इससे धर्म की प्रभावना होगी।

इसके अतिरिक्त और भी बहुतेरे कार्य हैं, जो सच्चे सेवाभावी और त्याग-परायण तृतीय वर्ग की स्थापना से सरलतापूर्वक सम्पन्न किये जा सकेंगे—जैसे साहित्य-प्रकाशन और शिक्षा आदि। आज यह सब कार्य व्यवस्थित रूप से नहीं हो रहे हैं। इनमें व्यवस्था लाने के लिए भी तीसरे वर्ग की आवश्यकता है।

तीसरे वर्ग के होने से धार्मिक कार्यों में बड़ी सहायता मिलेगी। यह वर्ग न तो साधुपद की मर्यादा में ही बन्धा रहेगा और न गृहस्थी के झंझटों में ही फंसा होगा। अतएव यह वर्ग धर्म-प्रचार में उसी प्रकार सहायता पहुँचा सकेगा जैसे चित्त प्रधान ने पहुंचाई थी। धर्म का बोध देने के लिए प्रदेशी राजा को केशी महाराज के पास

लाने की आवश्यकता थी। अगर केशी महाराज स्वयं चित्त प्रधान से, घोड़े फिराने के बहाने से राजा को अपने पास लाने के लिए कहते तो उनकी साधुता किस प्रकार रह सकती थी ? यद्यपि प्रदेशी राजा को धर्म का बोध देने की अत्यन्त आवश्यकता थी, फिर भी केशी महाराज ने चित्त प्रधान से यह नहीं कहा कि तुम राजा को मेरे पास ले आओ। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि अगर प्रदेशी राजा हमारे सम्मुख आवे तो हम उसे धर्म का उपदेश दे सकते हैं। इस स्थिति में तीसरे व्यक्ति की आवश्यकता थी। राजा धर्म से सर्वथा पराङ्मुख था। उसे धर्मश्रवण की आकांक्षा नहीं थी। महाराज केशी अनगार निस्पृह थे और उसको जाकर धर्म का उपदेश देने से धर्म के महत्व में क्षति पहुंचती थी। ऐसा करने से राजा शायद मुनिराज के किसी प्रकार के स्वार्थ की कल्पना भी करता और तब उतना प्रभाव न पड़ता। इस स्थिति में तीसरे व्यक्ति से ही काम चल सकता था। तीसरा व्यक्ति चित्त प्रधान यहां उपस्थित होता है और वह राजा को मुनि की सेवा में उपस्थित करने का संकल्प करता है। चित्त-प्रधान ने मुनिराज से कहा—'महाराज, राजा को धर्म का ज्ञान कराना अत्यावश्यक है। इससे बड़ा उपकार होगा। मैं घोड़ा फिराने के बहाने उसे आपकी सेवा में उपस्थित करूँगा।' मुनिराज ने चित्त से न तो ऐसा करने के लिए कहा और न ऐसा करने से रोका ही। चित्त बीच का व्यक्ति था। वह राजा को मुनिराज के समीप ले आया और मुनिराज ने उसे धर्म का बोध देकर न केवल उसी का वरन् समस्त प्रजा का भी असीम उपकार किया। तात्पर्य यह है कि तीसरे वर्ग की स्थापना से ऐसे अनेक कार्य सम्पन्न हो सकेंगे, जो न साधुओं द्वारा होने चाहिए और न श्रावकों द्वारा हो सकते हैं।

तीसरे वर्ग होने से एक लाभ और भी है। आज अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जिनसे न तो साधुता का भली-भांति पालन होता है और न साधुता का ढोंग ही छूटता है। वे साधु का वेश धारण किए हुए साधु की मर्यादा के भीतर नहीं रहते। तीसरे वर्ग की स्थापना से ऐसे व्यक्ति इस वर्ग में सम्मिलित हो सकेंगे और साधुत्व के ढोंग के पाप से बच जाएंगे। लोग असाधु को साधु समझने के दोष से बच सकेंगे।

तीसरे वर्ग की स्थापना से यद्यपि साधुओं की संख्या घटने की संभावना है और यह भी संभव है कि भविष्य में अनेक पुरुष साधु होने के बदले इसी वर्ग में प्रविष्ट हों, लेकिन इससे घबराने की आवश्यकता नहीं है। साधुता की महत्ता संख्या की विपुलता में नहीं है, वरन् चारित्र्य की उच्चता और त्याग की गम्भीरता में है। उच्च चरित्रवान् और सच्चे त्यागी मुनि अल्पसंख्यक हों तो भी वे साधु पद की गुरुता का संरक्षण कर सकेंगे। बहुसंख्यक शिथिलाचारी मुनि उस पद के गौरव को बढ़ाने के बदले घटाएंगे ही। अतएव मध्यम वर्ग की स्थापना का परिणाम यह भी होगा कि जो पूर्ण त्यागी और पूर्ण विरक्त होंगे, वही साधु बनेंगे और शेष लोग मध्यम वर्ग में सम्मिलित हो जाएंगे। इस प्रकार साधुओं की संख्या कदाचित् घटेगी तो भी उनकी महत्ता बढ़ेगी। जो लोग साधुता का पालन पूर्णरूपेण नहीं कर सकते या जिन लोगों के हृदय में साधु बनने की उत्कंठा नहीं है, वे लोग किसी कारण विशेष से, वेष धारण करके साधु का नाम धारण कर भी लें तो उनसे साधुता के कलंकित होने के अतिरिक्त और क्या लाभ हो सकता है ? इसलिए ऐसे लोगों का मध्यम वर्ग में रहना ही उपयोगी और श्रेयस्कर है। इन सब दृष्टियों से विचार करने पर समाज में तीसरे वर्ग की विशेष आवश्यकता प्रतीत होती है।

मित्रों ! जब तक श्रावक, संघ के अभ्युदय के लिए त्याग का भाव प्रदर्शित नहीं करेंगे और जब तक सब संतों की समाचारी एक नहीं हो जायगी, तब तक ऐसी कोई विशाल और प्रगतिशील योजना पूरी तरह सफल नहीं हो सकती। □

—व्याख्यान, महावीर भवन, दिल्ली
दिनांक 10 अक्टूबर, 1931

जैन सिद्धान्तों में सामाजिकता

□

आचार्य श्री गणेशीलाल जी म. सा.

भगवान महावीर का जन्म करीब ढाई हजार वर्ष पूर्व उस समय हुआ था जब चारों ओर घोर हिंसामय विकृतियाँ छाई हुई थी। पुरोहितों ने धर्म पर ठेका जमा लिया था तथा ईश्वर और मनुष्य के बीच सम्बन्ध कराने के वे ठेकेदार बन गए थे। वर्ण-व्यवस्था के नाम पर समाज में फूट, कलह तथा पारस्परिक विद्वेष की भावनाएँ प्रबल रूप धारण की हुई थीं। छुआछूत के झूठे झगड़े पूरी मात्रा में चल रहे थे और ऊँच-नीच का भेद कटु और वीभत्स हो रहा था। धर्म के नाम पर यज्ञों में घोड़े और मनुष्यों तक की बलि दी जाती थी और उसे हिंसा नहीं कहा जाता था। इस तरह अमानवीय लीला के उस वातावरण में भगवान महावीर ने जन्म लिया था।

और जहाँ ज्यादा विकृति फैल रही हो, महापुरुषत्व भी उसी में प्रकट होता है कि अन्धकार में प्रकाश की ज्योति जगाई जाय। फिर महावीर तो युग पुरुष थे। उन्होंने समाज में नई समानता की भावना का विकास किया। यद्यपि उन्होंने जिस जैन शासन को प्रदीप्त किया, उसका मुख्य मार्ग निवृत्ति मार्ग है अर्थात् सांसारिक प्रपंचों से जितनी मात्रा में निवृत्त हुआ जा सके, होकर आत्मा को मुक्ति मार्ग की ओर आगे बढ़ाया जाय। प्रत्यक्ष लक्ष्य साफ था लेकिन निवृत्ति की भावना ही संसार के प्राणियों में कब पैदा होगी, इस प्रश्न पर महावीर ने गम्भीरता से सोचा और उन विकृतियों से भरे युग में उन्होंने एक-एक विकृत्ति को चुन-चुनकर मानव हृदयों में से काटा व एक नये आस्थावान् वातावरण का सर्जन किया।

यह निश्चय है कि जब तक सांसारिक क्षेत्र में ही एक भावनापूर्ण वातावरण की सृष्टि नहीं होगी, समाज में परस्पर व्यवहार की रीति-नीति समान व सम्यक् नहीं बनेगी तो निवृत्ति के मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति भी साधारण रूप से पैदा नहीं हो सकेगी। इसलिए समाज में समान और सम्यक् वातावरण पैदा हो तथा सामाजिकता की भावना का प्रसार हो, यह निवृत्ति के प्रत्यक्ष लक्ष्य का परोक्ष साधना माना गया। क्योंकि यह संसार में प्रवृत्ति कराने की बात नहीं थी वरन् सामाजिक सुधार द्वारा निवृत्ति के लक्ष्य को मस्तिष्कों में स्पष्ट कराने का अथक प्रयास था।

यही कारण है कि उस अमानवीय युग में श्री महावीर ने जो समान मानवता का अलख जगाया और नया जागरण पैदा किया वही महावीर का प्रमुख महावीरत्व है।

मैं अभी आपको विस्तार से बताऊँगा कि महावीर के सिद्धान्तों में किस तरह समानता का अनुभाव कूट-कूटकर भरा है और ऐसा लगता है कि इस तरह एक लक्ष्य के लिए महावीर ने चतुर्मुखी प्रयास किये। एक दृष्टि से उन्होंने यह सिद्ध किया कि सारे प्राणी एक समान हैं, एक समान शक्ति के धारक हैं और समान सम्मान

के अधिकारी हैं और इसी धारणा को कार्यरूप में परिणत करने के लिए उन्होंने न सिर्फ तत्कालीन समाज में ही एक क्रान्ति की, बल्कि क्रान्ति की बलवती ध्वनि को युग-युगों के लिए गुँजायमान कर गये। जैन सिद्धान्तों में सामाजिकता की प्रभावशाली प्रेरणा भरी होने की यही मुख्य पृष्ठ-भूमिका है।

सबसे पहले जैन सिद्धान्तों में आध्यात्मिक दृष्टि से यह बताया गया है कि निश्चय नय से सभी आत्माएँ समान हैं। सभी अपना सर्वोच्च विकास साध सकती हैं और सभी आत्माओं में अनन्त शक्ति विद्यमान है। अनन्त आत्माएँ हैं उन सब का एक ही लक्षण है और जो भेद दृष्टि है वह सिर्फ कर्मों के कारण ही है। ये कर्म भी इन्हीं आत्माओं की उपज होते हैं। आत्माएँ ही स्वयं कर्म करती हैं और उनका फल भोगती हैं, इस व्यापार में वे किसी भी अन्य शक्ति द्वारा प्रतिबन्धित नहीं होती। जैन मान्यता ने ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता इसीलिए नहीं माना है कि यह सिद्धान्त आत्माओं में भेद करता है और ईश्वरत्व को आत्मा के सर्वोच्च विकास से अलग मानता है, जो समानता की दृष्टि से सर्वथा अनुचित व अग्राह्य है। प्राणीमात्र को हमारे यहां विकास की दृष्टि से पाँच भागों में बाँटा गया है, एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक और मनुष्य पंचेन्द्रियों में श्रेष्ठ प्राणी है। इस मूल आध्यात्मिक धारणा को पुष्ट करते हैं जैनों के अहिंसा और अनेकान्तवाद के सिद्धान्त, जो आचार और विचार की दृष्टि से मनुष्य में एकता और समता पैदा करते हैं।

जब सिद्धान्तों के मूल में ही मानव समानता का लक्ष्य सामने रखा गया तो वह साफ था कि उसका सुप्रभाव समाज की हर दिशा में पड़ता। इसलिए जैनधर्म ने कृत्रिम वर्ण व जाति भेद को सर्वथा तिरस्कृत किया और यह विचार फैलाया कि मनुष्य की समानता के आगे ये सब परम्पराएँ आघातकारी और विघ्नकारी हैं। जैनधर्म जाति या वर्ण के प्रचलित आधारों में विश्वास नहीं करता। कोई भी व्यक्ति इसलिए बड़ा या छोटा नहीं है कि वह अमुक वग या जाति में पैदा हुआ है।

वर्णवाद को गम्भीर चुनौती देते हुए महावीर ने उद्घोष किया कि वर्ण से कोई क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य या शूद्र माना भी जाय तो उसका आधार उसके द्वारा किए जाने वाले कर्म ही होंगे। यदि कोई वर्ण से ब्राह्मण है और कर्म शूद्र के करता है तो जैन सिद्धांत उसे ब्राह्मण मानने को तैयार नहीं, वह शूद्र की ही श्रेणी में गिना जाएगा। इसी तरह जाति या कुलों की ऊँच-नीचता भी मनुष्यों की ऊँच-नीचता नहीं हो सकती। महावीर ने खुले तौर पर वर्ण, जाति और कुलों के भेद-भावों के आधार पर खड़े हुए समाज को ललकारा और उसे सर्व समानता का नवीन आधार प्रदान किया।

उन्होंने कहा कि धर्म किसी का तिरस्कार करना नहीं सिखाता, भेदभाव की सीढ़ियां नहीं गढ़ता। आत्माएँ सब एक हैं, मनुष्य एक हैं तो उनमें कर्म के अलावा भेदभाव कौन सा? जाति-पांति या कि छुआछूत, ये सब अमानुषिक भेदभाव हैं। सभी मनुष्यों के एक सी इन्द्रियाँ हैं, विवेक और अनुभव की बुद्धि है, हो सकता है कि वातावरण के अनुसार इन शक्तियों के विकास में अन्तर हो, किन्तु उनकी मूल स्थिति में जब कोई भेदभाव नहीं है तो कोई कारण नहीं कि एक कुल या जाति में जन्म लेने से एक मनुष्य तो पूजनीय और प्रधान पात्र हो जाएगा और दूसरा जन्म लेने मात्र से ही नीच, अधर्म और अनादर का भाजन हो जाएगा।

सच पूछा जाए तो यह परम्परा बनाई धर्म के उन ठेकेदारों ने जो धर्म को अपनी पैतृक सम्पत्ति समझने लगे थे। ब्राह्मणों का वर्ग उच्च इसलिए माना गया कि वे साधनारत होकर ज्ञान का पठन-पाठन करते किन्तु वे तो आचरण के धरातल को छोड़कर वर्ण के आधार पर ही अपने-आपको बड़ा समझने लगे। इसी प्रकार

क्षत्रियों व वैश्यों का भी समाज रक्षा व पालन का जो कर्तव्य था, वह भी कमजोर हो गया। अब इन तीनों वर्गों के दंभ का सारा बोझ गिर पड़ा शूद्रों पर, जिनके कर्तव्य तो तीनों वर्णों की हर प्रकार की सेवा के थे मगर अधिकार कुछ नहीं और आश्चर्य तो इस बात का कि धर्म के क्षेत्र में भी वे निरीह बना दिए गए। धर्मस्थान में जाने का उनको अधिकार नहीं, धर्मग्रन्थ पढ़ने के वे योग्य नहीं और धर्मगुरुओं का उपदेश भी वे नहीं सुन सकते। एक तरह से सामाजिक अन्याय की हद हो गई थी और यह हद इतनी नफरत भरी थी कि चांडाल और मेहतर वगैरा को छुआ नहीं जा सकता। छूने से उच्च वर्णों का धर्म भ्रष्ट हो जाता। एक मनुष्य पशु को छूता था लेकिन अपने जैसे ही मनुष्य को छूना पाप था।

और आज भी वही घृणित परम्परा चल रही है, छुआछूत की बीमारी गांधीजी के सत्प्रयासों के बाद भी घर करे बैठी हुई है। अंग्रेजी फैशन में पड़े लोग कुत्तों को गोद में लेकर बैठेंगे, मगर हरिजन को नहीं छुएंगे। मनुष्यता का इससे अधिक पतन क्या हो सकता है कि मनुष्य-मनुष्य का इतना बीभत्स अनादर करे? और जब आप यह सोचेंगे कि हरिजन का ऐसा अनादर क्यों होता चला आ रहा है तो मेरा विचार है कि लज्जा से सिर झुक जायगा। इसीलिए तो उनका अनादर है कि वे आप लोगों का मैला अपने सिर पर उठाकर ले जाते हैं, जबकि सेवा का इससे बड़ा उदार क्या काम हो सकता है। माता होती है, बड़ी खुशी से अपने बालक की विष्टा साफ करती है, क्या आप उससे घृणा करोगे? उसकी ममता पूजी जाती है तो फिर हरिजन के साथ ऐसा अन्याय क्यों कि छुआछूत की प्रथा चलाई जाय? इसी छुआछूत ने हरिजनों के संस्कारों को गिराया है और उनके जीवन में आचरण की विकृतियाँ पैदा की है। आज जब उन्हें समाज में समान दर्जा मिलने लगेगा तो स्वयंमेव उनके जीवन में भी विकास होने लगेगा।

तो महावीर ने इस छुआछूत को भी बुनियाद से हिलाया था। धर्म का आचरण जो भी करेगा, वह ऊँचा चढ़ेगा। उसमें कोई भेदभाव नहीं कि चांडाल, श्रावक या साधु धर्म का आचरण न कर सके। जैन धर्म में यों तो कई हरिजन या चाँडाल हुए होंगे किन्तु चांडाल मुनि हरिकेशी बड़े प्रतापी हुए हैं। यद्यपि हरिकेशी प्रत्येक बुद्ध थे, वे स्वयं प्रतिबोध पाये। स्वयं ही दीक्षित हुए। और गण व गुरु किसी की भी सहायता न लेते हुए साधना क्षेत्र में आगे बढ़े व चरम विकास कर मोक्षगामी हुए। अतः उनकी वह अवस्था हमारे लिए आदर्श उपस्थित करती है।

जैन धर्म ने जाति, वर्ण व कुल के भेदभावों की जगह मानव समता ही नहीं बल्कि प्राणी-मात्र की समता की स्थापना की और गुण पूजा तथा आचरण को महत्ता प्रदान की। इस तथ्य का परिणाम यह हुआ कि प्रत्येक मनुष्य अपने ज्ञान और आचरण का विकास करके अपने जीवन में प्रगति लाने का प्रयास करे और जो इन श्रेणियों में ऊपर चढ़ता जाएगा वही अपने गुणों की दृष्टि से ऊँचा होता जाएगा। यह धारणा है जिससे हर प्राणी में विकास का एक उत्साह जागता है और हीन मान्यता पैदा नहीं होती। समाज में आध्यात्मिक व व्यावहारिक समता पैदा करने का महावीर का यह अनुपम उपदेश था।

पुरुषों और स्त्रियों की विकास क्षमता में भी जैन धर्म कोई भेद नहीं करता क्योंकि आत्म-विकास में लैंगिक भेद की भी कोई बाधा नहीं होती। समादर की दृष्टि से भी हमारे यहां दोनों में भेद नहीं होता क्योंकि समादर की बुनियाद हमारे यहां साधना और गुणों पर है। आप पुरुष होते हुए भी साध्वियों की वन्दना करते ही हैं, क्योंकि स्त्री होते हुए भी साधना और गुणों में वे आप श्रावकों से ऊँची होती है। वास्तव में देखा जाय तो जैन-सिद्धान्त मनुष्यों के बीच किसी भी प्रकार के भेदभावों को मान्यता नहीं देते और यही जैन धर्म की सर्वोत्कृष्ट विशेषता है कि वह मानवता का कितना बड़ा संरक्षक व उन्नायक है?

इस गुणपूजा में जैन धर्म बाह्याडम्बर को मुख्य नहीं मानता, मुख्य है व्यक्ति का जीवन स्तर और उसमें प्राप्त किया हुआ आत्मा का विकास। महावीर के समवशरण में मगध के महाराजा श्रेणिक और सकड़ाल कुम्हार का स्थान समान था क्योंकि वह समानता उनके बाह्याडम्बर पर आधारित नहीं थी। वह समानता उनके आन्तरिक विकास की स्थिति को जताती थी। धनिक व गरीव का कोई अन्तर नहीं था। आत्म-साधना आनन्द श्रावक ने भी की, जो कोटि-कोटि सम्पत्ति का स्वामी था और उसी श्रेणी की आत्म-साधना पूणिया श्रावक ने भी की जिसके घर में एक समय का पूरा अन्न भी नहीं था, किन्तु वारह उच्च श्रावकों की पांत में दोनों के सम्माननीय स्थान में कोई अन्तर नहीं था।

आज भी आप लोग देखते हैं कि समाज में धनिक और गरीव की स्थिति में वड़ी विषमता पाई जाती है। प्रतिष्ठा और सामाजिक सम्मान का प्रतीक धन अधिक वन गया है और गुणों का स्थान कम महत्वपूर्ण हो गया है, यह स्थिति जैन सिद्धान्तों की दृष्टि से उचित नहीं मानी जा सकती। इस विषमता पर आघात करने के लिए ही जैन दर्शन का अपरिग्रहवाद महावीर ने सम्मुख रखा। समाज में यदि श्रावक धन सम्पत्ति व उपभोग-परिभोग की समस्त सामग्रियों के उपयोग की मर्यादा वाँध लें और उसमें अपने ममत्व को कम करते जावें, स्वामित्व को छोड़ते जावें तो जरूरी है कि समाज की सम्पत्ति का अधिक-से-अधिक हाथों में विकेन्द्रीकरण होता जायेगा और समाज में जब दुःख और विषमता घटेगी तो यह कल्पना आसानी से की जा सकती है कि उस समय समाज में रही हुई असमानता व अनीति भी घटेगी। इसीलिए अपरिग्रहवाद का सामाजिक पहलू यह है कि वह परिग्रह के दंभ को हटाकर सामाजिक समानता का मार्ग प्रशस्त करता है।

इसके साथ ही श्रावक व साधु धर्म में जिस प्रकार हिंसा का निषेध किया गया है, वह समाज में एक उदार संस्कृति का प्रसारक है व प्रतिशोध की भावनाओं का शमन करता है। जैन धर्म अहिंसा प्रधान है लेकिन हिंसा और अन्याय में टक्कर हो जाय तो अन्याय को सहन करना गलत माना गया है। श्रावक चेड़ा महाराजा का दृष्टान्त आप जानते हैं कि न्याय की रक्षा के लिए उन्होंने भयंकर युद्ध किया किन्तु फिर भी वे अपने श्रावकत्व से स्खलित नहीं समझे गये। समाज में समानता तभी फैलेगी जब न्याय वुद्धि वनी रहेगी, वरना अगर अन्याय करने पर ही शक्तिधारी मनुष्य तुल जाएंगे तो वे समानता की रक्षा भी कतई नहीं करेंगे।

इस तरह जैन सिद्धान्तों की जो गति है वह निवृत्ति के लिए प्रवृत्ति की है, प्रवृत्ति के लिए प्रवृत्ति की नहीं। निवृत्ति का प्रसार उसी समाज में हो सकेगा जिसमें गुणों और आचरण की पूजा होती होगी। किन्तु जव तक ऐसा स्वस्थ समाज वनेगा नहीं तो यह भी सम्भव नहीं हो सकता कि निवृत्ति का व्यापक प्रसार हो सके।

'जे कम्मे सूरा, ते धम्मे सूरा' हमारे यहां कहा गया है कि शूरता पहले पैदा होनी चाहिए और वह जव कर्म में पैदा होगी तो धर्म में भी पैदा होगी। धर्म का आचरण तभी शुद्ध वन सकेगा जव समाज का व्यवहार शुद्ध होगा और समानता के जो स्रोत जैन सिद्धान्तों के अनुसार मैंने ऊपर वताए हैं, वे ही सशक्त साधन हैं जिनके आधार पर समाज के व्यवहार का शुद्धिकरण किया जा सकता है।

भारत देश कहने को तो धर्म प्रधान है पर आज दिशा किधर को है, यह समझने की वड़ी आवश्यकता है। क्या कोई भी व्रत किसी का तिरस्कार करना सिखाता है? इसका उत्तर है कि, नहीं। अहिंसा व्रत का अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट होगा कि किसी का मन, वचन या काया किसी से भी तिरस्कार करना हिंसा है, गुण और विकास की दृष्टि को छोड़कर घृणित दृष्टि से छुआछूत के झूठे भेद तथा धन के ओछे भेद से ऊँच-नीच का व्यवहार करना भी हिंसा है। अहिंसक कहलाने वाले जैन वन्धुओं को सोचने की जरूरत है कि वे कीड़ों और

मकोड़ों को किलामणा उपजाने में तो पाप समझते हैं लेकिन पंचेन्द्रिय मनुष्यों की भयंकर किलामणा उपजाने और उनका तिरस्कार करने में कोई भी जघन्य कार्य नहीं समझते, उसमें महापाप नहीं मानते ? किसी काल में अहंकार की भावना ने जाति, वर्ण व कुलगत भेदभावों को जन्म दिया तथा आज अर्थगत भेदभाव जटिल बनते जा रहे हैं किन्तु इन सब भेदभावों में प्रायः सत्यांश कुछ भी नहीं है, यह जैन सिद्धान्तों की दृढ़ धारणा है, क्योंकि ये सब भेदभाव अहंकार को पुष्ट करते हैं जो समानता का विरोधी है । 'माणेण अहमागई'—उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है कि मान से आत्मा अधम गति को पहुँचती है और जब मानव अधमाई की ओर बढ़ता है तो वह सत्य को नहीं समझ पाता ।

भगवान महावीर ने प्राणीमात्र की एकता, समानता और आत्मसम्मान और निर्वाह का आदर्श प्रस्तुत किया । उनका ढाई हजार वर्ष पहले कहा गया यह वाक्य आज भी एक नवीन प्रकाश प्रदान कर रहा है कि—

'अप्पसमं मन्नेच्छप्पिकायं ।'

छहों काया के समस्त जीवों को अपनी ही आत्मा के समान समझो । कितना विशाल और उदार सिद्धान्त है यह ? पर आज उन वीर प्रभु के उपासकों का ही मुख किधर है ? यह सोचें कि आत्मवत् व्यवहार से आपकी कितनी दूरी है ?

आज जैन धर्म के पुनीत सिद्धान्तों की माँग है कि उन पर आचरण किया जाय वरना अनाचरित सिद्धान्तों का कोई महत्त्व नहीं रह जाता और उनके आचरण का अर्थ होगा कि आप समानता के अनुभव को हृदय में जमा लें और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में उसका व्यवहारिक प्रयोग करें । जब यह तैयारी आप लोगों की हो जायेगी तो मानव के बीच रहे हुए अगुण कृत किसी भी प्रकार के अन्तर को आप सहन न कर सकेंगे, चाहे वह अन्तर जाति या वर्ण के भेद पर खड़ा हो या कि आर्थिक विषमता के कगार पर और तभी धर्म का भी स्वस्थ आचरण प्रारम्भ होगा । मानव के मानवोचित सम्यक् कर्त्तव्यों का पुंज ही तो धर्म है जो समाज में बन्धुता और समता की धारा बहाते हुए आत्म-विकास की दिशा में पराक्रमशाली बनाता है ।

जैन-सिद्धान्तों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वे समाज और व्यक्ति दोनों किनारों छूते को हैं और समाज की स्वस्थ रीति-नीति पर व्यक्ति के विकास का एवं व्यक्ति की तेजस्विता पर समाज के उत्थान का मार्ग प्रशस्त करते हैं । दोनों के अन्योन्याश्रित सम्बन्धों से दोनों का विकास साधना चाहते हैं ताकि मनुष्य का निवृत्ति-वाद न सिर्फ आत्म-कल्याण के लिए ही आवश्यक बने बल्कि वह मनुष्य की विकसित होती हुई सामाजिकता के लिए भी आवश्यक हो । सजग सामाजिकता आत्म-कल्याण की ज्योति जगाए यही जैन-सिद्धान्तों का सन्देश है ।

□

जैन मन्दिर, शाहदरा, दिल्ली

प्रथम आषाढ़ शुक्ला 2 सं. 2007

संघ-संगठन की आधारशिला

□

श्रेद्धय आचार्य श्री नानालालजी म. सा. के प्रवचनों से संकलित

परमात्मा जैसी ही शक्ति से सम्पन्न यह आत्मा इस विश्व में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। इस तत्त्व की जागृति पर ही प्रगति की समूची आधारशिला टिकी हुई है। आत्मा को जागृत करने के लिये इसके सजातीय तत्त्व का सम्पादन किया जाना जरूरी है। इस आत्मा का यदि विश्व में कोई सजातीय तत्त्व है तो वह परमात्मा ही है। परमात्म-अवस्था को प्राप्त करना ही इस आत्मा का ध्येय है। किन्तु इस ध्येय की ओर गति तभी की जा सकती है, जब आत्मा स्वयं अपने आपको समझकर अपने व परमात्मा के बीच की दूरी को समाप्त करने की चेष्टा करे।

इस कठिन पथ पर जब सामान्य जन में एकाकी चलने की क्षमता नहीं होती है तब वैसी क्षमता बनाने का यही उपाय हो सकता है कि जिन विशिष्ट जनों ने अपने ज्ञान एवं अनुभव की उत्कृष्टता के बाद जो मार्ग बनाया है, उस पर सबको साथ लेकर चलने की परिपाटी बनाई जावे। यही कारण है कि तीर्थंकरों ने केवल-ज्ञान की प्राप्ति होते ही सबको साथ लेकर चलने के लिये चतुर्विध तीर्थ की स्थापना की। इस स्थापना को चतुर्विध इसलिये कहा गया है कि इसके चार अंग होते हैं— साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका। इन चारों का समूह ही संघ है। यह चतुर्विध संघ एक प्रकार से आध्यात्मिक दृष्टि का संघ है, जिसे एक प्रकार से प्रभु का शासन भी कह सकते हैं। पृथक्-पृथक् रूप में एक एक को भी संघ कहने की परम्परा का कारण यह है कि ये संघ के अंगभूत हैं, चारों एक दूसरे के सहकारी हैं।

इस संदर्भ में आप यह भी समझ लें कि संघ जन समूह रूप अवश्य है किन्तु समूह से ही संघ का निर्माण नहीं हो जाता है। मनुष्यों का समूह तो यत्र-तत्र कहीं भी देखने को मिल सकता है। एक दुर्घटना-स्थल को देखने के लिये लोगों की भीड़ जमा हो जाती है। वह भीड़ संघ का रूप नहीं ले सकती है। क्योंकि संघ का तात्पर्य होता है वह जनसमूह जो एक निश्चित उद्देश्य के लिये समान विचार एवं आधार के धरातल पर नियमोपनियमों के अन्तर्गत अनुशासित होकर संगठित हो।

तीर्थंकारों ने संघ के माध्यम से सम्यक् ज्ञानदर्शन-चरित्र की उपलब्धि के लिये जो निर्देश दिये हैं, वे आध्यात्मिक जीवन की ज्योति प्रज्वलित करने वाले हैं, जन-जन के मानस को आलोकित करने वाले हैं। अतः संघबद्ध होकर उनका यथोचित पालन किया जाये तो मनुष्य समतामय धरातल पर न केवल अपने आपको ही, बल्कि सामूहिक शक्ति को सजग बनाकर सारे समाज को भी उस पर आरूढ़ कर सकता है। संघशक्ति की यही विशेषता होती है कि यह पराक्रम को सामूहिक रूप देकर उसे सभी के लिये साध्य बना सकती है।

संघ के बल पर सारे विश्व में समता के विचार और व्यवहार का त्वरित प्रचार व प्रसार किया जा सकता है। आप इस संघ संगठन के माहात्म्य को समझ कर जीवन के क्षेत्र में अपनी-अपनी स्थिति के साथ यदि उसे सम्यक् प्रकार से जोड़ने का प्रयास करेंगे तो संघ की वास्तविकता प्रकाशित हो सकेगी।

संघ एक दूसरे की हमदर्दी के साथ एक दूसरे के साथ स्नेह एवं सहयोग का ताना-बाना बुनते हुए आत्मीय सम्बन्धों से चलने का निर्देश देता है। यह स्नेह और सहयोग का आत्मीय सम्बन्ध संगठन की शक्ति को आत्म-जागृति की ओर मोड़ता है। संघशक्ति के साथ चलना व्यक्ति की शक्ति में अभिवृद्धि कर देता है।

संघ की स्थिति की तुलना इस सजीव पिण्ड (शरीर) के साथ की जा सकती है। इस शरीर के ढांचे में जो कुछ दिखाई दे रहा है, उसमें एक तत्त्व सामान्य है कि शरीर के विभिन्न अंग-उपांग समन्वय और सहयोग के साथ संगठित अवस्था में कार्य करते हैं। उनमें संगठित सहयोग की स्थिति ऐसी होती है कि ज्योंही किसी भाग में कोई गड़बड़ी पैदा होती है तो मस्तिष्क अपना कार्य करना प्रारम्भ कर देता है। सीने में दर्द हुआ तो वह अपने को वहीं केन्द्रित कर देगा। पीठ या पेट में दर्द हुआ तो वह अपनी शक्ति को लगाने में देरी नहीं करेगा। यदि पैर में कांटा लग गया या वह अशुचि में भर गया तब आंखें और हाथ तुरन्त कांटे आदि को दूर करने के लिये प्रयत्न करेंगे। इस प्रकार मस्तिष्क की वैचारिक शक्ति, हाथों की सेवा और सहायता, पेट का उत्तरदायित्व आदि सभी के समन्वित सहयोग से शरीर-संघ की व्यवस्था सुचारु रूप से चलती है।

इस शरीर पिंड की कार्यपद्धति से संघ संगठन की प्रेरणा ली जा सकती है। इस स्थिति को ध्यान में रखकर संघ की सुव्यवस्था पर चिन्तन की आवश्यकता है। एक-एक अंग के एक-एक कार्य का अपने जीवन में चिन्तन करें तथा उससे समुचित शिक्षा लेने का प्रयास करें तो सभी सामाजिक विषमताएं दूर कर सकते हैं। संघ में जितने भी भाई-बहिन हैं, उनमें से चाहे कोई अध्यक्ष रहे, पदाधिकारी रहे अथवा साधारण सदस्य हो, सभी एक दूसरे को साथ लेकर चले एवं स्नेह व सहयोग का परस्पर सद्भाव रखे, तभी संघ सुव्यवस्थित एवं संगठित रूप से चल सकता है। अतएव अपने-अपने स्थान पर अपने-अपने कर्तव्यों के बारे में गम्भीरता से सोचें तथा निश्चय करें कि किस श्रेणी में किस-किस योग्यता के साथ किन-किन कर्तव्यों का पालन करना है। संघ के अनुशासन में रहते हुए सभी अपनी श्रेणी एवं योग्यता के अनुसार कार्य करें। जहां जिस अंग के कार्य करने की दक्षता हो, वहां भी उसकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। प्रत्येक की योग्यतानुसार कार्य दिया जाये या कार्य लिया जाये तो सब समभाव से संगठित रूप से कार्य करते हुए संघ को सुव्यवस्थित तथा सुदृढ़ बना सकते हैं।

संघ के अन्दर रहते हुए भाई-बहिन किस रूप में सोचते हैं, उस सोचने में भी अन्तर लाने की आवश्यकता है। सोचने में जो विषमताएं हैं, उन्हें दूर करना होगा। यह सोचना समताभाव से होना चाहिये, व्यक्तिगत द्वेष-विद्वेष की भावना से नहीं। जब इस प्रकार से सोचने का क्रम सामूहिक रूप में चलने लगेगा तो उसका असर निश्चय ही व्यवहार में भी उतरेगा। तब व्यवहार भी समतामय बनेगा। कार्य और व्यवहार में जब समरूपता आयेगी तब संघ की चहुमुखी उन्नति में कोई व्यवधान नहीं रह जायेगा। अतः आध्यात्मिक उन्नति के लक्ष्य को सामने रखकर आत्मीयता से संघ का संचालन किया जाये और संघ की सेवा की जाये। आत्मीय भावना का तात्पर्य यह है कि सब अपने उत्तरदायित्वों का वहन करते हुए अपने-अपने पद अथवा स्थान पर ईमानदारी से संघ की सेवा का परिचय दें और समय या अन्य सहयोग देने की आवश्यकता हो तो वैसा सहयोग दें।

सेवा, समन्वय व समभाव के साथ सहयोग का जो उल्लेख किया गया है, उसमें सभी प्रकार के सहयोगों का समावेश हो जाता है। यह सहयोग चाहे तन से हो मन से हो अथवा अन्य प्रकार से हो, संघ के प्रत्येक सदस्य की तैयारी होनी चाहिये। यदि संघ सेवा की ऐसी उग्रभावना बनाई जाये तो निश्चय ही वैसी सेवा में अपूर्व आनन्द की उपलब्धि हो सकेगी तथा संघ के माध्यम से सबकी सामूहिक आत्मजागृति भी त्वरित गति से सम्पादित होने लगेगी।

हम सब महावीर के अनुयायी हैं, किसी एक जाति, सम्प्रदाय या दल के नहीं हैं। और महावीर ने जिस संघ का निर्माण किया था, वह भी समतामय शुद्ध मानवीय धरातल पर किया था। यदि समता के ऐसे धरातल पर हमारा जीवन आरूढ़ हो जाये और संघ के रूप में इस प्रकार निखरे कि दुनिया इसकी तरफ आकर्षित हो जाये, दुनिया यह कहने लगे कि यह संघ कतिपय विशिष्ट व्यक्तियों का अथवा इने-गिने व्यक्तियों के लिए नहीं है अपितु प्राणिमात्र की उन्नति का कल्याण-केन्द्र है।

संघ को ऐसा केन्द्र बनाने के लिये संघ-सदस्यों में संघ-सेवा की होड़ लगनी चाहिये और उनके कार्य-कलाप एकता के सूत्र में इस प्रकार आबद्ध हों जैसे कि माला के मनके एक सूत्र में पिरोये हुए होते हैं।

एक श्रद्धा, एक प्ररूपता, एक फरसना, एक आवाज, एक दृष्टि और एक रास्ते के सिद्धांत को यदि कोई संघ अपनाता है तो वह सब कुछ कर सकता है। आपकी पानी की तरह गति बननी चाहिये। पानी अपनी धारा में बहता है और उसके बीच कभी चट्टान आ जाती है, लेकिन पानी उससे हार खाकर पीछे नहीं हटता है। वह चट्टान से घबराता नहीं है, चट्टान ही उससे हार जाती है। क्योंकि पानी चट्टान से लड़ता नहीं है बल्कि अपनी कोमलता से उसको भी कोमल बना देता है और उस चट्टान में से अपनी राह बना लेता है। संघ में भी ऐसी ही गति आनी चाहिये। संघ के संचालन में कई कठिनाइयां आ सकती हैं, किन्तु संचालकों को अपनी कोमलता से दूसरों का हृदय जीतते हुए उन्नति के मार्ग को निष्कलंक व निष्कंटक बनाना चाहिये।

अतः संघ को निरन्तर क्रियाशील बनाये रखने के लिये स्नेह, सहानुभूति, समभाव एवं सहयोग का धरातल सुदृढ़ बनाना ही होगा और उसके साथ रचनात्मक कार्यक्रम अपनाने होंगे। तभी संघ सच्चा आध्यात्मिक संघ बना रह सकेगा।

□

दानदाता एवं दान*

□

आचार्य श्री नानेश

चरम तीर्थंकर प्रभु महावीर की देशना का मूल उद्देश्य है मुक्ति-मार्ग का प्रतिपादन। एक अपेक्षा से मुक्ति साधना के चार अंग हैं—दान, शील, तप और भाव। आधुनिक संदर्भ में दान ही धर्म का प्रमुख अंग रह गया है। किन्तु आप जानते हैं कि दान किसलिए दिया जाता है। अधिकांशतया दान दिया जाता है यश कीर्ति के लिए, शिलापट्ट लगाने के लिए। पर याद रखिए यदि दान नाम के लिए दिया जा रहा है तो वह होगा एक कीचड़ को साफ करके दूसरे कीचड़ से हाथ भर लेना; दूसरा लेप चढ़ा लेना।

वीतराग वाणी में दान का बड़ा महत्त्व बताया गया है। वाचक मुख्य उमा स्वाति ने कहा है—

अनुग्रहार्थं स्वस्याति सर्गो दानम्'

अर्थात् अनुग्रह के लिए अपने पदार्थ का परित्याग करना दान है।

दान धर्म समस्त सद्गुणों का मूल है। अतः पारमार्थिक दृष्टि से उसका विकास अन्य सद्गुणों की पुष्टि करता है तो व्यावहारिक दृष्टि से सामाजिक व्यवस्था को व्यवस्थित करता है। यहां जो अनुग्रह विशेषण दिया है वह द्वयर्थक है। अर्थात् वह अनुग्रह दान पात्र पर ही नहीं होता है, अपने पर भी होता है। दानदाता उस पदार्थ से ममत्व हटाकर अपनी आत्मा पर अनुग्रह कर रहा है और दान पात्र की आवश्यकता की पूर्ति करके उसका भी उपकार अनुग्रह कर रहा है। पैसा या कोई भी पदार्थ हाथ से तभी छूटता है जब उस पर से ममत्व छूटता है। ममत्व अथवा आसक्ति भाव का छूटना भी तो सहज नहीं है। इसलिए अनेक बार व्यक्ति दान देते हुए भी प्रतिदिन की भावना बना लेता है। वह यह सोच लेता है कि मुझे इस दान के द्वारा इतना फल मिलना चाहिये तो यह भी आत्मा पर मैल चढ़ाने के समान ही होगा। अनेक व्यक्ति अपनी भावी पीढ़ी को संस्कारित करने के लिए पारमार्थिक संस्थाएं स्थापित करते हैं। उसमें प्रमुख भावना ममत्व त्याग की होनी चाहिये। यदि शिलापट्ट लगाने की भावना हो गई हो तो समझिए दान में विष घोल देने जैसा कार्य हुआ। यह तो सौदेबाजी हो गई।

क्रान्तदृष्टा ज्योतिर्धर आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. जयपुर विराज रहे थे। स्थानक में प्रवेश करते समय उनकी दृष्टि एक व्यक्ति पर पड़ी, जिसके नेत्रों से आंसू छलक रहे थे। वह सिसकिएं भरकर रो रहा था। जानकारी करने पर पता लगा कि किसी पारमार्थिक संस्था के लिए चंदा इकट्ठा किया जा रहा था। उस व्यक्ति के पास कुल दस रुपये की पूंजी थी, जिसमें से वह एक रुपया उस संस्था को देना चाहता था किन्तु सेठों ने

* दिनांक 28-10-90 के प्रवचन से संकलित।

लेने से इन्कार कर दिया। वह आचार्य श्री से कहने लगा— गुरुदेव ! जिन्दगी पाप में तो लग ही रही है, सोचा अच्छे काम में भी कुछ लगे। किन्तु........ और वह रोने लगा।

उक्त प्रसंग को लेकर आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. ने प्रवचन में फरमाया—जो लखपति है वह एक हजार रुपया दान करता है, जो करोड़पति एक लाख रुपये का दान करता है और अरबपति एक करोड़ का दान करता है तब भी वह एक प्रतिशत ही देता है। जबकि दस रुपये में से एक रुपया दान देने वाला दस प्रतिशत दे रहा है। बोलो, कौन बड़ा दानी हुआ ? बन्धुओ ऐसी उच्च भावनाओं से दिया गया दान ही पारमार्थिक संस्थाओं का प्राण होता है और ऐसी पारमार्थिक संस्थाएं ही अधिक से अधिक समाज हित साध सकती हैं। आप अपने द्रव्य का सही उपयोग करना सीखें। यों आडम्बर में प्रदर्शन में हजारों लाखों रुपये पूरे हो जाते हैं और कर्मों का बन्धन भी होता है। सत्कार्य में लगा द्रव्य बीज तुल्य होता है, जो अनेक गुणित के रूप में फलित होता है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह गहन विचार का विषय है कि क्या समाज धन का इसी प्रकार व्यय या दुर्व्यय करता रहेगा ? क्या उसकी दृष्टि इसके यथार्थ उपयोग पर जायगी ? समाज में विरली ही ऐसी संस्थाएं हैं, जो समाजोन्नयन में, साधर्मी विकास में एवं बच्चों के संस्कार निर्माण में अपनी शक्ति का उपयोग करती हैं। ऐसे दानदाता भी विरले ही हैं जो बिना किसी प्रकार की महत्वाकांक्षा के, बिना किसी शिलापट्ट के दान करते हैं।

एक स्थान पर किसी पारमार्थिक संस्था के लिए चन्दा एकत्रित किया जा रहा था। एक व्यक्ति ने दस हजार रुपये लिखाये तो एक मजदूर ने अपने पास के कुल चार पैसे दिये। दान लेने वालों ने उसका नाम सबसे ऊपर लिखा। दस हजार रुपये देने वाले ने तर्क किया कि उसका नाम सबसे ऊपर क्यों, तो उसे बताया गया कि दस हजार रुपये देने वाले को इतना जोर नहीं लगता है, जितना कि चार पैसे देने वाले को। क्योंकि वह अपने पेट पर पट्टी बांधकर अपनी आवश्यकताओं से बचाकर दे रहा है। अतः इस दान का महत्व सर्वाधिक है। इसके विपरीत एक सभा में अनेक श्रीमन्त बैठे थे और चन्दे की लिस्ट बन रही थी। व्यक्ति अहम् पूर्वक कह रहे थे कि मेरा नाम सबसे ऊपर लिखो। चन्दा लिखने वाला एक प्रमुख व्यक्ति की प्रतीक्षा कर रहा था। लोग उतावले हो रहे थे। वह प्रमुख आया तो पता लगा कि यहां सबसे ऊपर नाम लिखने का विवाद हो रहा है। घन्टों बीत गये और कुछ नहीं हुआ। उसने सबसे नीचे अपना नाम लिखा दिया और सबसे अधिक अंक लिख दिये।

बन्धुओं ! वास्तविक दान तो वही है, जिसमें पुद्गलों के प्रति तो ममत्व हटे ही किन्तु अहंकार भी टूटे और अपने बड़े दानी होने का अहंकार न हो। आप सभी सुज्ञ हैं अतः मेरे आशय को अवश्य समझ गये होंगे। मोक्ष-मार्ग के चार अंगों में दान का एक सामान्य सा विवेचन आपके समक्ष आया है। आप इस पर चिन्तन मनन करें। साथ ही यह अवश्य स्मरण रखें कि दान में संख्या की अधिकता का महत्व नहीं होता है। महत्व होता है निष्काम भावना का। आज जहां तक मैं सुनता हूँ दानदाताओं की कमी नहीं है। कमी है ऐसी संस्थाओं की जो पैसों का समाजोत्थान के कार्य में सही रूप में उपयोग करती हों। काम करने वाला चाहिए— सहयोग तो चारों ओर से बरसता है। आप इस पर चिन्तन, मनन एवं अनुशीलन करेंगे तो आपका जीवन प्रशस्त बनेगा। इसी मंगल भावना के साथ।

विश्व एवम् व्यक्ति-कल्याण का अमोघ उपाय

समता-दर्शन

परमश्रद्धेय पूज्य आचार्य श्री नानालाल जी म. सा. के विचार

आज के युग में संघर्ष, विग्रह आदि का प्राबल्य परिलक्षित हो रहा है। मानवता का मापदण्ड सम्पत्ति और सत्ता को माना जाने लगा है। ऐसी स्थिति में जन-कल्याण का मार्ग जब तक प्रशस्त नहीं बनता, शांति होना कठिन है। विचार किया जाय तो मानना पड़ेगा कि व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र में सबसे पहले समदृष्टिभाव का होना अत्यावश्यक है। समता दर्शन की प्रत्येक क्षेत्र में आवश्यकता है। समता दर्शन के चार विभाग हैं—

1. सिद्धान्त-दर्शन—(क) समग्र आत्मीय शक्तियों के सम्यक् सर्वांगीण चरम विकास को सदा सर्वत्र सन्मुख रखना (ख) समस्त दुष्प्रवृत्तियों की त्यागपूर्ण सत्साधना में विश्वास रखना (ग) समस्त प्राणिवर्ग का स्वतन्त्र अस्तित्व स्वीकार करना (घ) समस्त जीवनोपयोगी पदार्थों के यथाविकास, यथायोग्य जनकल्याणार्थ संपरित्याग में आस्था रखना (ङ) द्रव्य-सम्पत्ति व सत्ता-प्रधान व्यवस्था के स्थान पर चेतना तथा कर्त्तव्यनिष्ठा को मुख्यता देना।

2. जीवन-दर्शन—(क) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और सापेक्षवाद को जीवन में उतारना (ख) सप्त कुव्यसन (मांस, मदिरापान, जुआ, चोरी, शिकार, परस्त्री व वेश्यागमन) का त्याग हो (ग) व्यक्ति, जीवन में संयम-निष्ठा को महत्त्व देता हुआ जीवन का सम्यक् विकास करे (घ) जिस पद पर जीवन रहे उस पद की मर्यादा का प्रामाणिकता से वहन करने का ध्यान रखना (ङ) व्यक्ति, जिस सामाजिक क्षेत्र में प्रवेश करे उसमें निष्कपट भावपूर्वक अपने जीवन की शुद्धता रखे तथा कुरीतियों, रिवाजों, प्रवृत्तियों का परिमार्जन करता हुआ मानव-कल्याणकारी उत्तम मर्यादाओं के निर्माणपूर्वक अपने जीवन स्तर को इस प्रकार बनाये जिससे प्रत्येक सामाजिक प्राणी शांति की श्वास ले सके (च) व्यक्ति, संबन्धित राष्ट्र व विश्व के साथ यथायोग्य सम्बन्ध को ध्यान में रखता हुआ अपने आपके हिस्से में कितनी जिम्मेवारी किस रूप में आ सकती है—इसका ईमानदारी से विचार करे और तद्नुसार यथाशक्ति, यथास्थान जीवन को ढालने की सम्यक् चेष्टा करे।

3. आत्म-दर्शन—विश्व में मुख्य दो तत्त्व हैं—एक चेतन तत्त्व और दूसरा जड़ तत्त्व। चेतन तत्त्व स्व-पर प्रकाश स्वरूप है और जड़ तत्त्व उससे भिन्न है। इन दोनों तत्त्वों के संमिश्रण से कर्म-युक्त संसारी प्राणी जगत है।
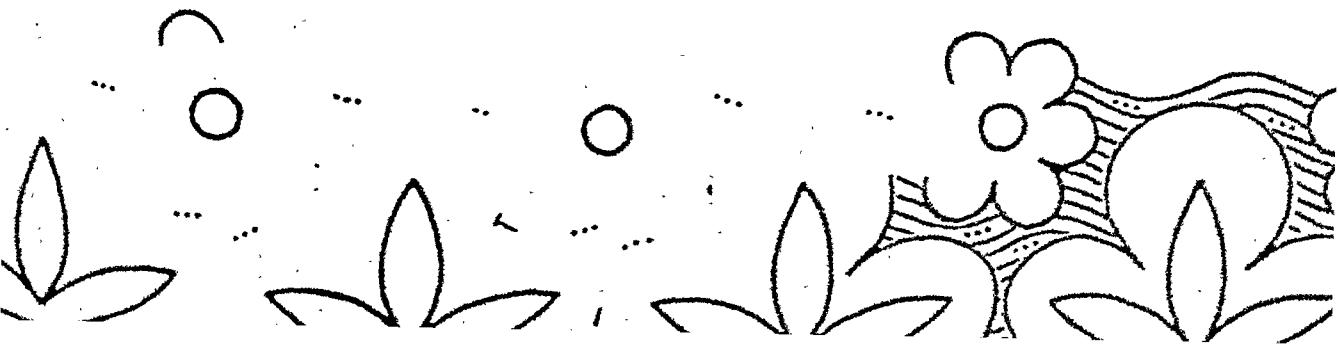
सत्साधना के सम्यक् आचरणपूर्वक आत्मा का साक्षात्कार चिन्तन, मनन व स्वानुभूति द्वारा करना आत्म-दर्शन है इसके लिए निम्नोक्त नियमितता एवं भावना आवश्यक है—

(क) अपने जीवन में रात दिन के घण्टों में से नियमित रूप से मर्यादा करना (ख) प्रातःकाल सूर्योदय के पहले कम-से-कम एक घण्टा आत्मदर्शन के लिए नियुक्त करना (ग) साधना के समय पापकारी प्रवृत्तियों का निरोध करना और सत्प्रवृत्तियों को आचरण में लाना (घ) अन्य प्राणियों के सुख-दुःख को अपने जैसा समझें। सबको सुख हो, इस भावना से अपनी सम्यक् प्रवृत्ति का ध्यान रखना तथा इन भावनाओं को पुष्ट करने के लिए सत्साहित्य का यथावकाश अध्ययन करना चाहिए।

4. परमात्म-दर्शन—रागद्वेष आदि विकारों के समूल नाशपूर्वक आत्मा के परिपूर्ण चरम विकास पर पहुँचने वाली आत्मा सही माने में परमात्म-दर्शन को प्राप्त होती है और परमात्म-दर्शन पद प्राप्त आत्मा सम्पूर्ण आत्मीय अनंत गुणों का उपयोग करती हुई जगत की मंगलमय कल्याण अवस्था की आदर्श स्थिति उपस्थित करती है।

अतः इसका निरन्तर ध्यान रखते हुए जो क्रमिक विकास पर चलता है, वह समता दर्शन की स्थिति से विश्व-कल्याण में महत्त्वपूर्ण स्थान की देन उपस्थित करता है। □

सामाजिक संस्थाओं का समाज के प्रति दायित्व

□

डॉ. नरेन्द्र भानावत

व्यक्ति और समाज का गहरा संबंध है। व्यक्ति यदि बूंद है तो समाज समुद्र। बूंद-बूंद के मिलने से समुद्र बनता है। व्यक्ति की संगठित इकाई समाज है। समाज में सबको समेटने की, सबको समाने की शक्ति होती है। समाज का उद्देश्य सबकी सेवा करना और सबको समान रूप से फलने-फूलने का अवसर प्रदान करना है। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए समाज द्वारा विविध रचनात्मक प्रवृत्तियों का संचालन किया जाता है। संचालन करने वाली संगठित शक्ति का नाम संस्था है। विविध संस्थाओं का उद्देश्य व्यक्ति का विकास करते हुए सामाजिक सौहार्द्र और सामाजिक स्वस्थता बनाये रखना है।

व्यक्ति जब मिलकर अपने विकास एवं रक्षण के लिए शक्ति का संगठन खड़ा करते हैं और उसे राजनैतिक आधार प्रदान करते हैं, तब वह संगठन राज्य या सरकार कहलाता है। सरकार और संस्था का परस्पर गहरा संबंध है। सरकार में राजनैतिक एवं संवैधानिक सर्वोच्च शक्ति निहित होती है। संस्था का भी अपना विधान होता है और उसके अनुसार उसकी प्रवृत्तियां संचालित होती हैं। राज्य या सरकार का क्षेत्र सीमित होता है, पर संस्था अपने क्षेत्र का विस्तार कर विश्वव्यापी भी बन सकती है।

सरकार के कई रूप हो सकते हैं— राजतंत्र, जनतंत्र, एकतंत्र आदि। इनमें जनतंत्रात्मक सरकार अच्छी मानी गई है। इसमें जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन होता है। पर शासन से जुड़े हुए लोग जब अपने स्वार्थ के लिए कार्य करने लगते हैं, तब यह सरकार भी भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार के दलदल में फंसकर विकृत बन जाती है। व्यक्ति की स्वतंत्रता दल या पार्टी द्वारा सीमित कर दी जाती है। कभी-कभी नौकरशाही हावी हो जाती है। व्यक्ति प्रशासनिक मशीन का पुर्जा बन कर रह जाता है। उसकी कार्यक्षमता कुंठित हो जाती है। अनावश्यक दबाव और हस्तक्षेप के कारण सर्वजनहितकारी लोकप्रवृत्ति बाधित होती है तथा सरकारी साधनों का उपयोग पार्टीविशेष या धर्मविशेष के लिए किया जाता है। इसके विपरीत सामाजिक संस्थाएं अधिक स्वतंत्र और कार्यक्षम हो सकती हैं। सरकार के साधन सीमित होते हैं। अतः संस्थाएं लोक-हितकारी प्रवृत्तियों में स्वतंत्र रूप से अपने को प्रवृत्त करती हैं। साधनों की सीमा के कारण जो कार्य सरकार नहीं कर पाती, उन कार्यों और प्रवृत्तियों को विविध क्षेत्रों में सेवारत सामाजिक संस्थाएं मुस्तैदी के साथ कर सकती हैं। इस दृष्टि से संस्थाओं का सरकार के प्रति और समाज के प्रति बड़ा दायित्व है। मोटे तौर से सरकार द्वारा सामाजिक संस्थाओं को प्रोत्साहन दिया जाता है। निश्चित नियमों के अनुसार उनका पंजीकरण होने पर उन्हें अनुदान भी दिया जाता है। कई प्रकार के टैक्स आदि में संस्थाओं को छूट दी जाती है। इस प्रकार संस्थाएं व्यक्ति और समाज के लिए बड़ी उपयोगी और आवश्यक हैं।

सरकारी ढांचा इस प्रकार बना हुआ होता है कि उसमें वैयक्तिक उपक्रम और कार्यकुशलता को महत्त्व नहीं मिल पाता, व्यक्ति की कार्यक्षमता का ह्रास होता रहता है और सद्भावना का स्रोत सूखता चलता है। जब सरकारी कामकाज में सेवावृत्ति का स्थान स्वार्थवृत्ति ले लेती है, तब साधनों का दुरुपयोग होने लगता है, परन्तु सामाजिक संस्थाएं मोटे तौर से इन दोषों से बची रहती हैं।

सामाजिक संस्थाओं के निर्माण में निःस्वार्थ, सेवाभावी, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का हाथ रहता है। समाज में व्याप्त विषमताओं, अभाव-अभियोगों, कुरीतियों, विसंगतियों को देखकर उन्हें दूर करने का भाव, बिना किसी स्वार्थभावना के जब मन-मस्तिष्क में घुमड़ता है, तब किसी संस्था का जन्म होता है। प्रायः देखने में आता है कि इन संस्थाओं के जन्म के पीछे किसी आध्यात्मिक महापुरुष, अनासक्त अध्यात्मयोगी, विश्व, वात्सल्यभावी, करुणहृदय, उदार सन्त, राष्ट्रोद्धार में संलग्न समाजसेवी, परदुःखकातर, दानवीर, श्रेष्ठी, निस्पृह प्रज्ञापुरुष आदि की प्रेरणा रहती है। सामाजिक संस्थाओं के उद्देश्य प्रायः बहुआयामी और बहुमुखी होते हैं। समाज हर क्षेत्र में स्वस्थ और सुखी बने, यह भावना प्रत्येक उद्देश्य के साथ अनुस्यूत रहती है। जरूरतमन्द की सहायता की जाये, विपन्न और विकलांगों को मदद दी जाये, आर्थिक दृष्टि से पिछड़े लोगों को स्वावलम्बी जीवन जीने के साधन उपलब्ध कराये जायें, प्रतिभावान जरूरतमन्द छात्रों को छात्रवृत्ति दी जाये, रोगियों को चिकित्सा-सुविधा प्रदान की जाये, सड़ी-गली व्यवस्थाओं एवं कुप्रथाओं के खिलाफ आंदोलन किया जाये, जीवन उत्थानकारी सत्संस्कारवर्धक, अल्पमोगी, सरल, प्रेरक साहित्य का प्रकाशन किया जाये आदि उद्देश्यों को लेकर इन संस्थाओं की स्थापना की जाती है। विशेष परिस्थितियों में किसी एक उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर भी संस्थाएं गठित की जाती हैं।

संस्थाओं का गठन चाहे जिसकी प्रेरणा और चाहे जिस उद्देश्य को लेकर किया गया हो, वे प्रभावकारी और जनोपयोगी तभी बन पाती हैं, जबकि उनके केन्द्र में निःस्वार्थ समाजसेवी कार्यकर्त्ता हों। महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यों को लक्ष्य में रखकर कई संस्थाएं स्थापित की गई हैं। जैन आचार्यों, सन्तों एवं साध्वियों के धर्मोपदेश से प्रेरित होकर भी कई संस्थाएं अस्तित्व में आयीं, पर कालप्रवाह के साथ अधिकांश संस्थाएं शिथिल हो जाती हैं या कुछ व्यक्तियों के प्रभावक्षेत्र तक वे सीमित हो जाती हैं। कोई भी सामाजिक संस्था समाज के प्रति अपना सच्चा और पूर्ण दायित्व तभी निभा पाती है, जबकि उसके मूल में समाज के निःस्वार्थ कार्यकर्त्ताओं और संवेदनशील समाजसेवियों की लोक शक्ति हो। जब कोई संस्था किसी व्यक्तिविशेष के घेरे में फंस जाती है, तब उसकी शक्ति और प्रवृत्ति कुंठित हो जाती है। यह सही है कि धन के बिना कोई संस्था नहीं चल सकती, पर यह भी उतना ही सच है कि धन-केन्द्रित होने पर संस्था निष्प्राण हो जाती है। अतः संस्था के संचालकों को सदैव इस बात के लिए सजग रहना चाहिये कि "संस्था के केन्द्र में वित्त न रहे, बल्कि चित्त रहे, पद न रहे बल्कि प्यार रहे, सत्ता न रहे, बल्कि सेवा रहे, शक्ति न रहे, बल्कि स्नेह रहे।" जब धन, संग्रह करना मात्र संस्था का लक्ष्य बन जाता है, तब संस्था के साधनों से लाभ उठाने वाले उस संस्था के इर्दगिर्द मंडराने लगते हैं। ऐसी संस्था ध्रुव फन्ड जमा कर लेती है और उसके ब्याज से ही अपनी प्रवृत्तियों का संचालन करती है। पर ब्याज की अपनी सीमा होती है और उससे सीमित कार्य ही किये जा सकते हैं। यह ठीक है कि ब्याज आय का एक स्थायी स्रोत है, पर उससे कार्यकर्त्ता की कार्यशक्ति कुन्द पड़ जाती है और संस्था के विभिन्न पदों की प्राप्ति के लिए परस्पर होड़ चलती है। ऐसे लोग पदों पर आ बैठते हैं, जो मात्र ब्याज को बांटते हैं

और आय के नये स्रोत ढूंढ़ने में अपनी प्राणशक्ति का उपयोग नहीं करते । अच्छा तो यह हो कि जो भी पदाधिकारी या कार्यकर्त्ता संस्था के साथ जुड़े, वह अपनी शक्ति, सामर्थ्य, योग्यता और सेवाभावना के आधार पर संस्था के लिए नित्य नये वित्तीय साधन जुटाये और उस राशि का लोकहितकारी प्रवृत्तियों में अधिकाधिक उपयोग करे । संस्था के आय के स्रोत तालाब की तरह मात्र बंधे-बंधाये न हों वरन् सतत् प्रवाही नदी की तरह उनमें नित-नयापन आता रहे, ताकि कार्यकर्त्ता सजग और जागरूक बने रहें ।

कई बार यह भी देखने में आता है कि संस्था एक ही परिवार और उसके सदस्यों तक सीमित हो जाती है । ऐसी स्थिति में मोटे तौर से संस्था पर एकाधिकार की भावना पैदा हो जाती है, जो आगे चलकर संस्था के लिए हितकारी सिद्ध नहीं होती । अतः जिस संस्था का अधिकार क्षेत्र जितना अधिक व्यापक होगा, वह संस्था उतनी ही दीर्घायु और संजीवन्त होगी ।

सामाजिक संस्थाएं अपना दायित्व निभाते समय इस बात का ध्यान रखें कि उनकी स्थापना अधिकारों के लिए न होकर कर्त्तव्य के लिए हुई है और वह कर्त्तव्य है— दूसरों की सेवा । सेवा के नाम पर सौदे करने वाली संस्थाएं व्यावसायिक बन जाती हैं, तब वे अपने पथ से च्युत हो जाती हैं । सामाजिक संस्था के पीछे कोई न कोई आदर्श और मूल्य निहित रहता है । ऐसा मूल्य, जो बदले में कुछ नहीं चाहता, वह दूसरों को अधिक से अधिक दे और कुछ न ले। ऐसी भाव-भूमि पर खड़ी सामाजिक संस्था सच्चे अर्थों में दिव्यता धारण करती है ।

मुझे यह प्रसन्नता है कि श्री श्वे. साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था की स्थापना विक्रम सं. 1984 में बीकानेर में शिक्षा, साहित्य, सेवा एवं स्वावलम्बन के उद्देश्यों को लेकर की गई । संस्था के हीरक-जयन्ती वर्ष के उपलक्ष में स्मारिका प्रकाशन के साथ-साथ अन्य विविध कार्यक्रम आयोजित किये गये हैं । इस अवसर पर मैं संस्था, उसके पदाधिकारियों तथा अन्य जुड़े हुए समाजसेवियों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के प्रति मंगलकामनाएं अर्पित करता हूं । मुझे पूरा विश्वास है कि हीरक-जयन्ती वर्ष के दौरान यह संस्था अपनी प्रवृत्तियों को अधिक व्यापक तथा गतिशील बनाने के लिए ठोस निर्णय लेगी और उन्हें मूर्तरूप देने के लिए कार्य करेगी ।

□

—सी–235-ए, दयानन्द मार्ग,
तिलक नगर, जयपुर–302 015

सामाजिक संस्था के आधारबिन्दु : व्यक्ति और समाज

☐

डॉ. दिलीप पटेल

व्यक्ति और समाज परस्पर पूरक हैं। एक दूसरे परस्पर की शक्ति तभी बन सकते हैं जब दोनों में संवाद हो। व्यक्ति का संस्थात्मक जीवन ही समाज है; वह समाज जो व्यक्ति की अभिव्यक्ति का आँगन है। व्यक्ति का मुक्त पंछी समाज के आकाश में उड़ता है।

अंग्रेजी में व्यक्ति का पर्यायावाची शब्द है 'इनडिविज्युअल।' इस शब्द का अनेक अर्थों में प्रयोग होता आया है। तथ्य अथवा सत्व की दृष्टि से जो एक हो, जिसकी अविभाज्य सत्ता हो, उसे व्यक्ति कहते हैं। दूसरे शब्दों में —'जिसे वियोजित नहीं किया जा सकता, जिसका अस्तित्व स्वतंत्र अविभाज्य सत्ता के रूप में हो, संख्या की दृष्टि से जो एक हो, जो अपने ही वर्ग में अन्यों से अलग अपनी विशिष्टता रखता हो, अपने गुणों, लक्षणों, चारित्रिक विशिष्टताओं के कारण जो दूसरों से अलग किया जा सकता हो, वही व्यक्ति है।' पाश्चात्य विद्वानों—न्यूमैन, व्हेवैल, जे मनरो गिब्सन के अनुसार 'समाज अथवा परिवार की समष्टि में व्यष्टि का बोध कराने वाले, संख्या में एक, मानवीय प्राणी को व्यक्ति कहते हैं।' बृहत् हिन्दी कोश (ज्ञानमंडल) में व्यक्ति के दो अर्थ दिये गये हैं। क्रियागत अर्थ में व्यक्ति का मतलब है व्यक्त या प्रकट होने की क्रिया; प्रकट रूप या स्पष्टता और संज्ञा के रूप में व्यक्ति को जाति या समष्टि का उल्टा, व्यष्टि अथवा जन बतलाया गया है। मनुष्य, मानव, मनुज, नर, पुरुष शब्द भी व्यक्ति के विशिष्ट अथवा उसी से मिले-जुले अर्थ में प्रयुक्त किये जाते हैं। इस प्रकार व्यक्ति का अर्थ है वह मानव प्राणी जो समष्टि का विकल्प है, व्यष्टि है, जो एक इकाई है, अलग है, जिसका अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, जो मूर्त है, जो चेतन है और जिसकी स्वतंत्र विशिष्ट अविभाज्य सत्ता ही उसके अस्तित्व का प्रमाण है।

मानवमूल्य एक ऐसी आचरण-संहिता या सद्गुण-समूह है जिसे अपने संस्कारों एवं पर्यावरण के माध्यम से अपनाकर मनुष्य अपने निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु अपनी जीवनपद्धति का निर्माण करता है, अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। इसमें मनुष्य की धारणाएँ, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति, आस्था आदि समेकित होते हैं। ये मानवमूल्य एक ओर व्यक्ति के अंतःकरण द्वारा नियंत्रित होते हैं तो दूसरी ओर उसकी संस्कृति एवं परम्परा द्वारा क्रमशः निस्सृत एवं परिपोषित होते हैं। 'बहुजनहित' या 'सर्वजनहित' इन जीवन-मूल्यों की कसौटी कही जा सकती है। मूल्यों का उपयोग व्यक्तिगत स्तर पर तथा सामाजिक स्तर पर करना आवश्यक है।

प्रतिष्ठित जीवन-मूल्यों का आज तत्परता से ध्वंस हो रहा है। पारिवारिक क्षेत्र से लेकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक यह विघटन की प्रक्रिया जारी है। आज पितृऋण, गुरु-ऋण, देव-ऋण और समाज-ऋण में किसी को

आस्था नहीं रह गई है। जवान बेटे और पिता में अनबन है। अध्यापक तो परिवार के बाहर का आदमी ठहरा। समता, मानवतावाद, आस्तिकता, व्यक्तिस्वातंत्र्य जैसे नवीन मूल्य क्षितिज पर आकार ग्रहण कर रहे हैं। इन मूल्यों में व्यक्तिस्वातंत्र्य शीर्षमूल्य होगा।

हमारे समाज का गठन व्यक्ति की इकाईयों से नहीं, परिवार की इकाईयों से हुआ है। व्यक्ति का व्यक्ति रूप में कोई स्थान नहीं है, किसी पारिवारिक रिश्ते के आधार के रूप में ही उसका स्थान है। इसलिए परिवार का कर्त्ता परिवार की ओर से ही सोचता-करता है। परिवार की इकाईयों से गठित समाज एक बृहत्तर परिवार है, इसीलिए गाँव के समाज में जातिभेद, आर्थिक-स्तरभेद के बावजूद समान वय के लोगों के बीच भाई-भाई का, भाई-बहन का, देवर-भाभी का रिश्ता प्रगाढ़ होता है। ये रिश्ते भी व्यक्ति-व्यक्ति के बीच नहीं होते, परिवार और परिवार के बीच होते हैं। इस गठन की प्रकृति के कारण एकता का एक सूत्र बनता है परस्पर प्रेम में बंधना, इस बँधन में अपने व्यक्तित्व से मुक्ति पाना।

मूल्य और आदर्श ये दोनों ही चरित्रनिर्माण एवं व्यक्तिविकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं। आत्मसात् किये हुए मूल्य ही जीवन के आदर्श बनते हैं। मूल्य एक प्रकार का मानक है। मनुष्य किसी वस्तु, क्रिया, विचार को अपनाने से पूर्व यह निर्णय करता है कि वह उसे अपनाये या त्याग दे। जब ऐसा विचारभाव व्यक्ति के मन में निर्णयात्मक ढंग से आता है तो वह मूल्य कहलाता है। सत्य, अहिंसा आदि महत्त्वपूर्ण जीवन-मूल्य हैं, जिनका स्वीकार मुनि, आचार्य, साधु संतों से लेकर विवेकवान गृहस्थों ने किया है।

समाज नाम की संस्था से बहुत-सी सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए उसका अंग बने रहने की दिशा में व्यक्ति को अपनी स्वतंत्रता का कुछ न कुछ अंश उसे देना ही पड़ता है, पर इस अंश की मात्रा इतनी भर होनी चाहिए कि समाज विघटित होने से बचा रहे।

मानवमूल्यों के संबंध में आज की समस्या है कथनी और करनी में अंतर। मनुष्य दूसरों को अनैतिक आचरण न करने का उपदेश करता है और स्वयं अनैतिक आचरण करता है। गोस्वामी तुलसीदास जी इसी बात को कहते हैं—

'पर-उपदेश कुशल बहुतेरे,
जे आचरहिं ते नर न घनेरे।'

दादूदयाल कहते हैं कि—मिश्री-मिश्री कहने से किसी का मुँह मीठा नहीं होता। मुँह तो मीठा होगा उसमें मिश्री डालने से ही।

आज व्यक्ति का जीवन आत्यंतिक रूप से एकांगी और आत्मकेन्द्रित हो गया है। समूह में जीने की प्रेरणाएँ लुप्त हो गई हैं, ऐसी परिस्थिति में संवाद, संवेदना और वेदना से कोई रिश्ता-नाता ही मानो नहीं रह गया है। व्यक्ति और समाज की उत्फुल्ल चेतना ही संस्था है। संस्था के आधारबिन्दु हैं व्यक्ति और समाज। इनकी स्वस्थता ही संस्था की शक्ति है।

□

कला, विज्ञान, वाणिज्य महाविद्यालय, शहादा
(धुलिया महाराष्ट्र)

समाज और संस्था

□

विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया

समुदाय का विस्तृत और व्यवस्थित रूप वस्तुतः समाज कहलाता है। समाज में एक जैसा खान-पान होता है, एक जैसा रहन-सहन होता है, एक जैसी धार्मिक और सांस्कृतिक मान्यताएं होती हैं। जैसी-जैसी मान्यताएं वैसा-वैसा समाज होता है।

प्राणधारियों के अपने-अपने समाज होते हैं। उन सभी समाजियों का विकास और ह्रास उनकी अपनी-अपनी चर्या पर निर्भर करता है। यह तय है कि मनुष्य सभी प्राणधारियों में श्रेष्ठ कहलाता है। उसकी श्रेष्ठता का अपना आधार भी है। यहां संयम और तपश्चरण करने की क्षमता और शक्यता अपूर्व होती है। ऐसी सुविधा अन्यत्र प्रायः दुर्लभ ही है।

मनुष्य की भांति मनुष्य समाज भी समाजशास्त्र में उल्लेखनीय स्थान रखता है। अन्य प्राणधारियों की अपेक्षा मनुष्य समाज में विवेक और समझ के उपयोग करने की अन्यतम अपेक्षा की जाती है। गिरावट कहीं हो सकती है किन्तु विकसित समुदाय में इसके लिए कोई सम्भावना रह नहीं जाती। किन्तु ऐसा आज पाया नहीं जाता। जितनी गिरावट मनुष्य समाज की हुई, कदाचित अन्य किसी भी प्राणधारी में गिरावट के अभिदर्शन नहीं होते। मनुष्य समाज के द्वारा जितना अधिक अन्य प्राणधारियों का हनन और विनाश होता है, अब तो उससे कम नहीं किन्तु अधिक स्वयं मनुष्य का हनन हो रहा है। आदमी आदमी का विनाश करने में सक्रिय है।

मनुष्य समाज अनेक दृष्टियों से विभक्त है। मान्यताओं के आधार पर उसका अपना समुदाय और समाज खड़ा हो गया है। जाति अथवा वर्ण के आधार पर आदमी का समुदाय बंट गया है। शिक्षा अथवा धन के आधार पर भी समाज खड़े किए गए हैं। इन सभी समाजों में उसके विकास और उल्लास के लिए अनेक प्रकार की संस्थाएं स्थिर की गई हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, व्यापार, धर्म, सेवा आदि नाना दृष्टियों से मानवीय समाज में नाना प्रकार की सामाजिक संस्थाएं खड़ी की गई हैं। इन सभी संस्थाओं के अपने लक्ष्य हैं। अपने-अपने उद्देश्य हैं। उनकी विधि है। उनका विधान है। उन्हीं के अनुसार वे सभी अपना-अपना कार्य किया करती हैं।

समाज में नवचेतना, सामाजिक जागरण तथा आध्यात्मिक उत्कर्ष होने के लिए इन सभी सामाजिक संस्थाओं का गठन किया जाता है। यदि मनुष्य का शारीरिक विकास नहीं होता तो उसका आध्यात्मिक विकास भी सम्भव नहीं। दरिद्र तथा विपन्न कभी धार्मिक नहीं होता। धार्मिक सदा स्वावलम्बी होता है, पुष्ट होता है और होता है सब प्रकार से सम्पन्न। विचार कीजिए जो स्वयं सुखसाता से रहता है वही प्राणी सदा दूसरों को

सुख-सम्पन्नता का वातावरण जुटा सकता है। जो स्वयं जीता है वही दूसरों को जीने का वातावरण जुटाता है। ये सभी सामाजिक संस्थाएं मानवीय विकास और उल्लास के लिए साधन जुटाया करती हैं।

कोई काम पूर्ण हो, इसके लिए दो बातों का होना बहुत आवश्यक होता है। उपादानशक्ति और निमित्तशक्ति मिलकर किसी कार्य के सम्पादन कराने में पूर्णतः सक्षम हुआ करती हैं। उपादानशक्ति कहलाती है व्यक्ति की अपनी आत्मिक शक्ति और उसके अनुरूप दूसरों के द्वारा जुटाई जाने वाली बाहरी सहायक शक्ति को कहा गया है निमित्तशक्ति। सामाजिक संस्थाएं निमित्तशक्ति जुटाने की भूमिका का निर्वाह करती हैं। दर-असल यही इन संस्थाओं का उद्देश्य हुआ करता है।

सामाजिक संस्था व्यक्ति से उठकर पूरे व्यक्ति समूह पर विचार करती है। यद्यपि व्यक्ति उसकी महत्त्वपूर्ण इकाई होती है और इकाई पर ही दहाई, सैकड़ा, हजार आदिक मान प्रतिमान मुखर होते हैं, तथापि उनके द्वार सदा समष्टि के लिए ही खुला करते हैं व्यष्टि के लिए नहीं। आज इसके विपरीत देखा जा रहा है कि सामाजिक संस्थाएं प्रायः व्यक्तिवादी होती जा रही हैं। उनका लक्ष्य बहुजनहिताय की अपेक्षा स्वान्तःसुखाय होता जा रहा है। इसका परिणाम अन्ततः विनाशकारी होता है। यह हो भी रहा है। उदाहरण के लिए धर्म-शाला लीजिए। यह एक प्राचीन सामाजिक संस्था है। नाम से और काम से इसका अपना मूल्य है, मानक है। वहां सदाचरण को वरीयता मिलनी चाहिए। मदिरापेयी का प्रवेश वर्जित है। मांसाहारी, कदाचारी के लिए प्रवेश वर्जित है। बात सीधी है और किसी भी समाज में इसे बुरा नहीं माना जाएगा। इससे व्यक्ति में संयम के संस्कार उत्पन्न होने के लिए वातावरण बनेगा। इससे व्यक्ति और समाज का विकास होगा। इसके अलावा रोक धर्मशाला की आर्थिक व्यंजना के विपरीत होगी। दो दशाब्दि पूर्व तक इसका इसी अर्थ में प्रयोग होता रहा है। धर्मशाला में किसी भी व्याज से पैसा लेना, अनर्थकारी है। किन्तु आज इसकी अवमानना हुई है। अब अर्थ हो गया धर्मशाला बनाम होटल।

धर्मशाला की भांति समाज में सामाजिकों के विकास और उल्लास-वर्द्धन के लिए नाना प्रकार की संस्थाएं स्थिर की जाती हैं। स्वतंत्रता के पहिले और बाद में ऐसी अनेक संस्थाएं सक्रिय हैं जिन्होंने मानवीय विकास को ध्यान में रखकर बहुत ही महनीय कार्य किए हैं। आरम्भ में इन संस्थाओं में व्यक्ति के विकास का आधार चरित्र और कर्त्तव्यनिष्ठा हुआ करता है। परन्तु आगे चलकर स्वार्थ और संकीर्णता के कारण भाई और भतीजावाद मुखर हो जाता है। ऐसी स्थिति में गुणों की दशा दयनीय हो जाती है। जिस संस्था में गुणों के स्थान पर व्यक्ति की उपासना प्रारम्भ हो उठे, समझना चाहिए कि उस समाज का विकास मंथर हो उठेगा।

गुणों की वंदना का विधान जिस समुदाय और समाज में समादृत होता है, उस समाज के विकास को कोई बाधा नहीं। आज दुर्भाग्य की बात यह है कि गुणों की अवमानना हो रही है। इससे व्यक्ति में स्वावलम्बन की शक्ति का ह्रास होने लगता है। जो संस्था स्वयं स्वावलम्बी नहीं होती, वह अपने आश्रित लोगों में स्वाव-लम्बन के संस्कार जगाने में कभी सक्षम नहीं हो सकती। प्रत्येक सामाजिक संस्था का दायित्व बन जाता है कि वह अपने अधीनस्थ व्यक्तियों में स्वावलम्बन की शक्ति का संचार करे। तभी व्यक्ति में सत्य के प्रति आस्था जगेगी। कहा भी है—सत्य सदा चिरंजीवी रहता है। सत्य मार्ग पर देवताओं द्वारा संरक्षण ही नहीं सम्मान और सहयोग मिला करता है।

संस्थाओं में काम करने वाले कार्यकर्ताओं का पहिले चयन किया जाता था । सुयोग्य और चारित्रिक शक्तिसम्पन्न व्यक्ति को विवश किया जाता था कि वह संस्था को संभाले । पूरे समाज के आग्रह पर वह कार्य को स्वीकार करता था । काम होता था । किन्तु आज स्थिति इससे सर्वथा विपरीत है । आज निर्वाचन होता है कार्यकर्ता का जो संस्था को संभाले । उसका प्रचार करें । अधिकारी बनें । अतः विवाद खड़े होते हैं और परस्पर में संस्था को लेकर द्वेष और ईर्ष्या पैदा हो जाती है । जो संगठन ईर्ष्या और द्वेष से ग्रस्त हो जाते हैं वे कभी चिरंजीवी नहीं होते ।

संस्था का प्रबंध किसी विधान से अनुशासित रहता है । विधान की सुरक्षा करना प्रत्येक समाजी का कर्तव्य है । विधानसभा के आगे सभी समान हैं । इस दृष्टि से प्रत्येक समाजी समान अधिकार रखता है और तभी वह अपने कर्तव्य पालन करने में सक्रिय रह सकता है । स्वार्थ व्यक्ति को संकीर्ण बना देता है । संस्था की सेवा सदा निःस्वार्थ करनी चाहिए, तभी उसके द्वारा विकास की पूर्णता हो सकती है ।

समुदाय में जो स्थान व्यक्ति का है, समाज में वही स्थान संस्था का होता है । किसी भी समुदाय का यदि एक भी व्यक्ति चरित्रहीन है तो वह पूरे समुदाय को प्रभावित करता है । समुदाय की शक्ति का आधार होता है व्यक्ति । उसमें विकास के सभी गुणों का सामंजस्य होना चाहिए । संस्था किसी भी समाज को बहुत ऊंचा उठा सकती है यदि उसका स्तर संतुलित है । उदाहरण के लिए हम धर्मस्थान को लें । धर्मस्थान में जाने से व्यक्ति को अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है । यदि धर्मस्थान आकुलता का केन्द्र बन जावे तो वहां जाकर व्यक्ति को क्या शान्ति का अनुभव हो सकता है ? शांति की बात तो दूर अशांति का आगमन हो सकता है ।

संस्थायें चाहें तो समाज के नवांकुरों में सदाचार के संस्कार जगा सकती हैं और सम्यक् श्रमसाधना के प्रति लगाव पैदा कर सकती हैं । समाज की इकाई में यदि श्रम के प्रति लगाव पैदा हो जाए तो व्यक्ति में उपयोग पक्ष सजग हो सकता है । किसी भी व्यक्ति में यदि उपयोग न जगा और उसके पास सभी प्रकार की समृद्धि और सम्पन्नता हो तो भी उसकी सार्थकता नहीं कही जा सकती ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज के विकास और वर्द्धन के लिए संस्थाओं की भूमिका बड़े महत्व की होती है । जागरूक समाज ही श्रेष्ठ और उपयोगी संस्थाओं को जन्म दे पाते हैं । अतः समाज और संस्था का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है ।

व्यक्ति और समाज की संवेदना : सामाजिक संस्था

□

प्राध्यापक श्री विजय प्रकाश शर्मा

विश्व की आत्मा के अंतर्गत कई तहें होती हैं। अर्थात् विश्व की आत्मा के अंतर्गत राष्ट्र की आत्मा होती है, राष्ट्र की आत्मा के अंतर्गत समाज की आत्मा होती है एवं समाज की आत्मा के अंतर्गत बसी होती है व्यक्ति की आत्मा। व्यक्ति और समाज का भाव संबंध सर्वमान्य है। व्यक्ति समाजप्रिय, समूहप्रिय प्राणी माना जाता है। 'व्यक्ति समाज के लिए है या समाज व्यक्ति के लिए है' यह प्रश्न भी यहाँ विचारणीय है। कुछ विद्वानों के अनुसार व्यक्ति ही श्रेष्ठ है क्योंकि भले ही वह समाज का एक अंग कहा जाये परन्तु उसका एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है। इस व्यक्तिवाद का उदय 16वीं शती में हुआ था। हॉब्ज, रूसो, सर पर्सीनन (इंग्लैंड) जैसे विचारक इसके समर्थक थे। व्यक्ति का विकास बहुआयामी हो, इसमें समाज का हस्तक्षेप न हो, व्यक्ति को उसके इस विकास का अवसर देना समाज और शासन का कार्य भले ही हो परंतु विकास व्यक्ति का ही होता है। व्यक्ति ही महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यक्ति का मन होता है समाज का मन नहीं होता। 'व्यक्तिनिष्ठता' का आग्रह रखने वालों की दृष्टि से इस प्रकार व्यक्ति ही सर्वमान्य है न कि समाज।

इन व्यक्तिनिष्ठ वक्तव्यों पर विचार करने के बाद पूर्ण रूप से हमारा समाधान नहीं हो पाता। क्योंकि व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता, व्यक्ति का संबंध अनिवार्यतः समाज से मानना ही होगा। व्यक्ति समाज का अंग होता है। अनेक आदर्श व्यक्तियों का समूह ही एक आदर्श समाज बन जाता है। परन्तु समाजनिष्ठतावादियों ने केवल समाज को श्रेष्ठता प्रदान की एवं व्यक्तिनिष्ठतावादियों ने व्यक्ति को श्रेष्ठता प्रदान की। यहीं व्यक्ति और समाज में विरोध पैदा हो गया। समाजनिष्ठता के आग्रही हेगेल और कार्ल मार्क्स माने जाते हैं। उनके अनुसार सामाजिक संस्था या समाज ही श्रेष्ठ है। समाज के बिना व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता, इसीलिये व्यक्ति को चाहिए कि वह समाज और राष्ट्र में विलीन हो जाए, तभी व्यक्ति का एक विशिष्ट मूल्य होगा। मैथिलीशरण गुप्तजी लिखते हैं—

'जिसको न निज देश तथा निज गौरव का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा-मृतक समान है॥'

इससे यही सिद्ध होता है कि व्यक्ति समाज के लिए है। इसी विचार के आधार पर नाझी और फॉसिस्ट पंथों का निर्माण हुआ। इन पंथों के कारण जर्मनी और इटली में जुल्म और सामंतशाही ने अपनी बाहें फैलाईं।

व्यक्ति समाज में समूह बनाकर जब से रहता आया है, धीरे-धीरे उसका विकास ही होता गया है। इस विकास के पीछे उसका चिंतन था। इसीलिए दर्शनशास्त्र से लेकर आकाश विज्ञान तक की प्रगति वह कर पाया।

संस्थाओं में काम करने वाले कार्यकर्त्ताओं का पहिले चयन किया जाता था। सुयोग्य और चारित्रिक शक्तिसम्पन्न व्यक्ति को विवश किया जाता था कि वह संस्था को संभाले। पूरे समाज के आग्रह पर वह कार्य को स्वीकार करता था। काम होता था। किन्तु आज स्थिति इससे सर्वथा विपरीत है। आज निर्वाचन होता है कार्यकर्त्ता का जो संस्था को संभाले। उसका प्रबंधक बने। अधिकारी बने। अतः विवाद उठ खड़े होते हैं और परस्पर में संस्था को लेकर द्वेष और ईर्ष्या पैदा हो जाती है। जो संगठन ईर्ष्या और द्वेष से ग्रस्त हो जाते हैं वे कभी चिरंजीवी नहीं होते।

संस्था का प्रबंध किसी विधान से अनुप्राणित रहता है। विधान की सुरक्षा करना प्रत्येक समाजी का कर्त्तव्य है। नियमावली के आगे सभी समान हैं। इस दृष्टि से प्रत्येक समाजी समान अधिकार रखता है और तभी वह अपने कर्त्तव्य पालन करने में सक्रिय रह सकता है। स्वार्थ व्यक्ति को संकीर्ण बना देता है। संस्था की सेवा सदा निःस्वार्थ करनी चाहिए, तभी उसके द्वारा विघटन की सुरक्षा हो सकती है।

समुदाय में जो स्थान व्यक्ति का है, समाज में वही स्थान संस्था का होता है। किसी भी समुदाय का यदि एक भी व्यक्ति चरित्रहीन है तो वह पूरे समुदाय को प्रभावित करता है। समुदाय की शक्ति का आधार होता है व्यक्ति। उसमें विकास के सभी गुणों का सामंजस्य होना चाहिए। संस्था किसी भी समाज को बहुत ऊंचा उठा सकती है यदि उसका स्तर संयमित है। उदाहरण के लिए हम धर्मायतन को लें। धर्मायतन में जाने से व्यक्ति को अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है। यदि धर्मायतन आकुलता का केन्द्र बन जावे तो वहां जाकर व्यक्ति को क्या शान्ति का अनुभव हो सकता है? शांति की बात तो दूर अशांति का आगमन हो सकता है।

संस्थायें चाहें तो समाज के नवांकुरों में सदाचार के संस्कार लगा सकती हैं और सम्यक् श्रमसाधना के प्रति लगाव पैदा कर सकती हैं। समाज की इकाई में यदि श्रम के प्रति लगाव पैदा हो जाए तो व्यक्ति में उपयोग पक्ष सजग हो सकता है। किसी भी व्यक्ति में यदि उपयोग न जगा और उसके पास सभी प्रकार की समृद्धि और सम्पन्नता हो तो भी उसकी सार्थकता नहीं कही जा सकती।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि समाज के विकास और वर्द्धन के लिए संस्थाओं की भूमिका बड़े महत्त्व की होती है। जागरूक समाज ही श्रेष्ठ और उपयोगी संस्थाओं को जन्म दे पाते हैं। अतः समाज और संस्था का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है।

□

394 मंगल कलश
सर्वोदयनगर, आगरा रोड, अलीगढ़ 202 001

व्यक्ति और समाज की संवेदना : सामाजिक संस्था

□

प्राध्यापक श्री विजय प्रकाश शर्मा

विश्व की आत्मा के अंतर्गत कई तहें होती हैं। अर्थात् विश्व की आत्मा के अंतर्गत राष्ट्र की आत्मा होती है, राष्ट्र की आत्मा के अंतर्गत समाज की आत्मा होती है एवं समाज की आत्मा के अंतर्गत वसी होती है व्यक्ति की आत्मा। व्यक्ति और समाज का भाव संबंध सर्वमान्य है। व्यक्ति समाजप्रिय, समूहप्रिय प्राणी माना जाता है। 'व्यक्ति समाज के लिए है या समाज व्यक्ति के लिए है' यह प्रश्न भी यहाँ विचारणीय है। कुछ विद्वानों के अनुसार व्यक्ति ही श्रेष्ठ है क्योंकि भले ही वह समाज का एक अंग कहा जाये परन्तु उसका एक स्वतंत्र अस्तित्व होता है। इस व्यक्तिवाद का उदय 16वीं शती में हुआ था। हॉब्ज, रूसो, सर पर्सीनिन (इंग्लैंड) जैसे विचारक इसके समर्थक थे। व्यक्ति का विकास बहुआयामी हो, इसमें समाज का हस्तक्षेप न हो, व्यक्ति को उसके इस विकास का अवसर देना समाज और शासन का कार्य भले ही हो परंतु विकास व्यक्ति का ही होता है। व्यक्ति ही महत्वपूर्ण है क्योंकि व्यक्ति का मन होता है समाज का मन नहीं होता। 'व्यक्तिनिष्ठता' का आग्रह रखने वालों की दृष्टि से इस प्रकार व्यक्ति ही सर्वमान्य है न कि समाज।

इन व्यक्तिनिष्ठ वक्तव्यों पर विचार करने के बाद पूर्ण रूप से हमारा समाधान नहीं हो पाता। क्योंकि व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता, व्यक्ति का संबंध अनिवार्यतः समाज से मानना ही होगा। व्यक्ति समाज का अंग होता है। अनेक आदर्श व्यक्तियों का समूह ही एक आदर्श समाज बन जाता है। परन्तु समाजनिष्ठतावादियों ने केवल समाज को श्रेष्ठता प्रदान की एवं व्यक्तिनिष्ठतावादियों ने व्यक्ति को श्रेष्ठता प्रदान की। यहीं व्यक्ति और समाज में विरोध पैदा हो गया। समाजनिष्ठता के आग्रही हेगेल और कार्ल मार्क्स माने जाते हैं। उनके अनुसार सामाजिक संस्था या समाज ही श्रेष्ठ है। समाज के बिना व्यक्ति जीवित नहीं रह सकता, इसीलिये व्यक्ति को चाहिए कि वह समाज और राष्ट्र में विलीन हो जाए, तभी व्यक्ति का एक विशिष्ट मूल्य होगा। मैथिलीशरण गुप्तजी लिखते हैं—

'जिसको न निज देश तथा निज गौरव का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा-मृतक समान है॥'

इससे यही सिद्ध होता है कि व्यक्ति समाज के लिए है। इसी विचार के आधार पर नाज़ी और फॉसिस्ट पंथों का निर्माण हुआ। इन पंथों के कारण जर्मनी और इटली में जुल्म और सामंतशाही ने अपनी बाहें फैलाई।

व्यक्ति समाज में समूह बनाकर जब से रहता आया है, धीरे-धीरे उसका विकास ही होता गया है। इस विकास के पीछे उसका चिंतन था। इसीलिए दर्शनशास्त्र से लेकर आकाश विज्ञान तक की प्रगति वह कर पाया

है। इस प्रगति के लिए सभी शास्त्रों का उसे अध्ययन करना पड़ता है और यह अध्ययन देने वाली संस्थाएँ समाज ही बनाता है। जिस समाज में व्यक्ति जन्म लेता है, वहीं पनपता है विकास पाता है।

समाज की निर्मिति के पश्चात् समाज को रोटी, कपड़ा और मकान की मूलभूत आवश्यकताओं के अलावा अन्य आवश्यकताएँ भी महसूस हुई और इन्हीं आवश्यकताओं ने कुछ संस्थाओं को जन्म दिया। जैसे—घर, परिवार, विवाह, शिक्षा, जाति आदि समाज की आवश्यकताओं को पूर्ण करने वाली विविध सामाजिक संस्थाएँ हैं। परन्तु हम जिस संदर्भ में सामाजिक संस्थाओं का जिक्र कर रहे हैं वे ये संस्थाएँ कतई नहीं हैं। समाज के निर्माण के साथ ही निर्मित हुई इन संस्थाओं ने जो समस्याएँ पैदा कीं उनसे समाज एवं राष्ट्र का ही नहीं अपितु स्वयं व्यक्ति का अस्तित्व भी संकट में पड़ गया। उन समस्याओं का एक सर्वमान्य हल ढूंढ़ने की आवश्यकता महसूस हुई तथा इस प्रकार सामाजिक संस्थाओं में से ही सामाजिक संस्थाओं का जन्म हुआ।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अतीत काल में निर्मित समस्याओं का जवाब थीं ये सामाजिक संस्थायें। व्यक्ति को एवं उसके व्यक्तित्व को समाज की, राष्ट्र की समग्रता में प्रतिष्ठापित करने का श्रेय इन्हीं सामाजिक संस्थाओं को जाता है। अतः आज सामाजिक संस्थाएँ एक ऐसी आवश्यकता हो गयी हैं कि जिनके अनेकों उपयोगी कार्यों से व्यक्ति और समाज दोनों लाभान्वित होते रहते हैं। जो वस्तु अथवा तथ्य जितना पुराना हो जाता है उसके जन्म और विकास के संबंध में उतने ही अधिक मत प्रचलित हो जाते हैं। सामाजिक संस्थायें व्यक्ति और समाज की धरोहर रही हैं। आज यह सामाजिक संस्थाएँ अपने वर्तमान स्वरूप में चाहे जितनी विकृत हो गई हों, निश्चय ही समाज के लिए अत्यंत उपयोगी रही हैं, रहेंगी। इनके द्वारा अवश्य ही व्यक्ति को, समाज को, राष्ट्र को लाभ हुआ है और होता रहेगा।

व्यक्ति समाज से जुड़ेगा केवल समाजसेवा से, उत्सर्ग की भावना से, कुछ देने की कामना से अर्थात् व्यक्ति जहाँ जन्म लेकर बड़ा होता है उस समाज का भी उस पर कुछ अधिकार है। समाज को यह कहने का पूरा अधिकार है कि उस व्यक्ति को चाहिये कि उसने जिससे जो पाया है, उसको वह अर्पित कर दे। समाज अथवा मानव जाति उससे न्यायपूर्वक यह माँग कर सकती है कि उस व्यक्ति को दो रूप से सेवा करने में समर्थ होना चाहिये; चाहे तो जहाँ तक वह स्वयं पहुँचा है, उसी ध्येय तक दूसरे अधिकारी व्यक्तियों को ले चले; अथवा साधारण मनुष्य की दृष्टि से नहीं, वरन् सिद्ध पुरुषों की दृष्टि से जो सामाजिक भार उस पर आता है, उसको वहन करे।

समाज की स्थिति इससे थोड़ी भिन्न है। सामाजिक संस्था में 'समाजसेवा' पद का बड़ा व्यापक अर्थ है। संबंधित व्यक्ति और व्यक्तिओं को शारीरिक, मानसिक, नैतिक या आध्यात्मिक लाभ पहुँचाने की दृष्टि से एवं स्वयं की अर्थ लाभ होने की भावना से शून्य, समाज के लोगों के प्रति की गई किसी भी सेवा को हम इसमें गिन सकते हैं। शुद्ध प्रेम से ही ऐसी सेवा की प्रेरणा मिलती है और बिना किसी बदले की आशा के यह सेवा केवल सेवा के लिए ही होती है। समाजसेवा के उच्चत्तम रूप की तुलना उस सेवा से की जा सकती है, जो माता अपने शिशु को प्रदान करती है। माँ को शिशु के लिए एकात्मता की भावना स्वाभाविक होती है, वह किसी बदले की अपेक्षा नहीं रखती; पर किसी और को दूसरे के प्रति प्रेम जागृत करना पड़ता है और धीरे-धीरे इस बात को सीखना और हृदयंगम करना होता है कि सभी जीव एक हैं। मानवता के साथ एकात्मता का बोध केवल ऐसी ही साधना का परिणाम हो सकता है। बस, इसी अवस्था में मनुष्य का समाज के साथ एकीकरण हो जाता

है तथा वह यह अनुभव करने लगता है कि समाज और वह दो भिन्न सत्ताएँ नहीं हैं। इस अभिन्नता के अहसास का होना ही सामाजिक संस्था एवं व्यक्ति का परम दायित्व है।

इस अभिन्नता के अहसास को ही अद्वैतता कहा जाता है। मानव आज व्यक्तिवाद, संकीर्णता, स्वार्थ-परता के घेरे में बंधता जा रहा है और इसी के परिणाम स्वरूप असुरक्षा, अशांति, दुःख झेल रहा है। जबकि आवश्यकता है समत्व की, ऐक्य की, अद्वैत की। अद्वैत की, एकता की महान भावना ही हमारे जीवन का मूलाधार है। एक ऋषि ने कहा भी है—'यो वै भूमा तत्सुखम्' भूमा में अनंत विस्तार पाना ही सुख है और यही विस्तार व्यक्ति में होना आवश्यक है। यह विस्तार जब व्यापक होगा तब व्यक्ति के द्वैत संबंधी सभी द्वन्द्व समाप्त हो जाएंगे और मानव व्यक्ति और समाज का समन्वय कर पाएगा।

स्पेन्सर ने कहा है—'समाज शारीरिक संस्था है। जिस प्रकार शरीर में प्रत्येक अवयव का संबंध है, उसी प्रकार समाजगत प्रत्येक व्यक्ति समाज-सूत्र द्वारा एक दूसरे से बँधा हुआ है।' व्यक्ति के जीवन की बनावट ही कुछ इस प्रकार की है कि वह अपने आप में सिमट कर रह ही नहीं सकता। सम्पूर्ण समाज से वह प्रभावित होता है, और उससे सम्पूर्ण समाज। साँसों के आगमन-निर्गमन के लिए जिस प्रकार वायु की अनिवार्य आवश्यकता है उसी प्रकार व्यक्ति का विकास भी समष्टि के जीवन के साथ जुड़ा हुआ है।

इसी व्यष्टि और समष्टि को, व्यक्ति और समाज के जोड़ का आदेश देते हुए हमारे ऋषियों ने कहा है—

* 'संगच्छध्वम् सम्वदध्वम्' तुम्हारी गति और वाणी में एकता हो।
* 'समानी प्रपा सहवोऽन्न भागः' तुम्हारे खाने पीने के स्थान व भाग एक जैसे हों।
* 'समानो मन्त्रः समिति समानी' तुम्हारी सभा समितियाँ एक समान हों और तुम्हारे विचारों में सामंजस्य-एकरूपता हो।
* 'समानी व आकूतिः समानो हृदयानिवः' तुम्हारे हृदय की संकल्प भावनाएँ एकसी हों।

सबके साथ अपनी एकता स्थापित करने वाले व्यक्ति की दो अवस्थाओं का वर्णन ईशावास्योपनिषद् करता है। यथा—

'यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते॥'
(ईशावास्योपनिषद् 6)

अर्थात् 'जो पुरुष सब प्राणियों को आत्मा में देखता है और आत्मा को सब प्राणियों में देखता है, वह निर्भय हो जाता है और अपनी रक्षा करने की कोई भी चिंता नहीं करता।'

दूसरी दृष्टि उस व्यक्ति की है, जिसने पूर्ण एकता स्थापित कर ली है। दूसरे की प्रेमजन्य निःस्वार्थ सेवा से आरम्भ करके यह स्थिति क्रमशः प्राप्त की जा सकती है। निःस्वार्थ समाजसेवा के मार्ग में सामाजिक संस्थाएँ और मानव जितने ही आगे बढ़ते हैं उतनी ही समस्त मानव समाज के साथ एकता की अनुभूति भी

उसके निकट होती है। गीता ऐसी संस्था को या व्यक्ति को 'सर्वभूतहिते रतः' अर्थात् सब प्राणियों का भला करने वाली बतलाती है।

आज की स्थिति अधिक जटिल और व्यामिश्र है। मनुष्य अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़ रहा है। चहुँओर अशांति, अनिश्चितता, भीषण हाःहाकार और युद्ध है; ऐसी परिस्थिति में मनुष्य की संवेदना का दायरा जितना तेजस्वी और सर्वग्राही होगा उतना वह सामाजिक दायरा ईमानदारी से दे सकेगा। आवश्यकता है एक ऐसे समाज जीवन की जहाँ व्यक्ति की चेतना को उन्मुक्त आकाश मिले और समाज का चिन्तन व्यक्ति की स्वतंत्रता का विश्वासी हो।

□

कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय शाहादा
(धूलिया, महाराष्ट्र) 425 409

व्यक्ति और सामाजिक संस्था : आन्तरसंबंधों का विश्लेषण

□

डॉ. श्री विश्वास पाटील

व्यक्ति एक है और उससे जो अलग हैं वे अनेक हैं। इसे ही दर्शनशास्त्र व्यष्टि और समष्टि कहता है। हमारे समाजशास्त्री और जीवनशास्त्री पंडितों की खोज का सार है यह वचन 'जो व्यष्टि में है, वही समष्टि में है—यद् व्यष्टौ, तत्समष्टौ !' व्यष्टि और समष्टि की एकता-आन्तर संबंध ! अर्थात् व्यक्ति अपने आप में पूर्ण है फिर भी वह सारे संसार का प्रतिनिधि है । है तो वह इकला और अकेला लेकिन सब के साथ होने की सुखानुभूति उसके जीवन में नई रंगीनी ला देती है।

मनुष्य आदिम अवस्था से निरन्तर विकास की दिशा में अग्रेसर है। आदिम मनुष्य के आन्तर सम्बन्ध अत्यन्त सहज थे लेकिन धीरे-धीरे इन सम्बन्धों ने नई-नई भावनाओं को जन्म दिया। इन नूतन भावनाओं से नवीन संबंधों की रचना हुई। परिणामस्वरूप मनुष्य की सामाजिक व्यवस्था निरन्तर जटिलतर बनती जा रही है। मनुष्य अगर अनजाने में ही क्यों न हो लेकिन गलती करता है तो उसे स्लेट पर लिखे मजमून की तरह पोंछ कर मिटा नहीं सकता। मनुष्य की गलती अपरिहार्यत: उसके जीवन को नया मोड़ दे अपना प्रभाव छोड़ती ही है। नाना प्रकार की सही-गलत कार्रवाइयाँ मनुष्य करता है। उलझनों को सुलझाने के क्रम में कभी उलझनें अधिक बढ़ जाती हैं। नई उलझनें भी पैदा हो सकती हैं। यही वजह है कि जीवन की व्यामिश्र प्रवृत्तियों को समझना और पचाना आसान काम नहीं है। जीवन का रूप जटिल बन गया है और बनता जा रहा है।

व्यक्ति, समाज और स्वतंत्रता का प्रश्न

व्यक्ति की चेतना का मुक्त प्रकटीकरण सामाजिक संस्था में देखा जा सकता है। एक अस्तित्ववादी चिन्तक की सूक्ति है—Hell is other people. लेकिन इससे भी बढ़कर जीवन सत्य यह है कि Freedom is other people. क्योंकि व्यक्ति-इकाई का अपनी स्वतंत्रता के दावे का कोई मानी नहीं है। वह दावा तभी सार्थक हो सकता है जब वह अपनी स्वतंत्रता का न होकर दूसरे की स्वतंत्रता का हो। यहीं से सामाजिक मंगलेच्छा की भूमिका और भावना जन्म लेती है। सामाजिक मंगलेच्छा का दृष्टिकोण लोकमंगल की आधारशिला है। मंगल का अर्थ व्यापक है—स्वतंत्रता, सुन्दरता, विकास, सुरक्षा, आनंद आदि।

स्वतंत्रता एक मूल्य है। व्यक्ति की महत्ता इस बात में है कि वह मूल्यों का सृष्टा है और वह यह जानता है कि उसके द्वारा निर्मित मूल्यों का मान और महत्व उससे भी अधिक है। स्वतंत्रता एक ऐसा मूल्य है जिसके आधार पर अन्य मूल्यों को अर्थ मिलता है। स्वतंत्रता मनुष्य की मानवता का न केवल प्रमाण है, अपितु लक्ष्य भी है। आज हम लोगों को स्वतंत्रता की मात्र राजनीतिक परिभाषा ही मालूम है; लेकिन इन परिभाषा

का मूल आधार सांस्कृतिक और आध्यात्मिक है। व्यक्ति और समाज की परस्पर निर्भरता भी एक मूल्य है। इस मूल्य का सर्जक और प्रतिष्ठाता स्वयं व्यक्ति ही है। इस परस्पर संबंध का आधार विवेक है।

व्यक्ति और समाज की परस्पर संवादपनता से ही स्वतंत्रता की रक्षा और विकास संभव है। इसे सुव्यवस्थित रूप देने के लिए व्यवस्था की जरूरत है। व्यक्ति जीता ही है व्यवस्था में और व्यवस्थित जीवनदर्शन उसकी एक सामाजिक प्रेरणा है। इस सामाजिक प्रेरणा से शून्य जीवन व्यक्तिवादी होता है। यह व्यक्तिवाद नाना रूपों में भेस बदल-बदल कर हमारे सामने उपस्थित होता है। सीमित मनोवृत्ति वाला, असामाजिक—असंस्कृत—अंधश्रद्धाओं से—अंध प्रेरणाओं से ग्रस्त व्यक्तिवाद, स्वार्थ और संकीर्णता की ओर उन्मुख करने वाला व्यक्तिवाद मानवता के लिए तो खतरा है ही; स्वयं व्यक्ति के लिए भी आत्मघाती सिद्ध हो सकता है। व्यक्ति की सामाजिक स्थिति की मर्यादा को रेखांकित करते हुए सुप्रसिद्ध चिन्तक, बर्ट्रेंड रसेल ने अपने 'Has a man Future' ? नामक विचार प्रवर्तक ग्रंथ में लिखा है—

'Man is not as Completaly Social as ants or bees, who apparently never have any impulse to behave in an anti-social manner.'

समाज या जन या लोक के मुख्यतः तीन अर्थ लिए जा सकते हैं—विश्वजगत, समाज और जन। आज की चिन्तन प्रणाली में इसका विवेचन हम यों कर सकते हैं—लौकिक Secular, सामाजिक Social, जनवादी Democratic.

हिन्दी के सुप्रसिद्ध निबंधकार आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने अपने 'गोस्वामी तुलसीदास' (चिंतामणि) शीर्षक निबंध में लिखा है—

'जिस धर्म की रक्षा में लोक की रक्षा होती है, जिससे समाज चलता है—वह यही व्यापक धर्म है जिसमें शिष्टों का आदर, दीनों पर दया, दुष्टों के दमन आदि जीवन के अनेक रूपों का सौंदर्य दिखाई देगा—वही सर्वांगपूर्ण (ज्ञान-भाव-क्रियात्मक) लोकधर्म का मार्ग होगा····जो धर्म उपदेश द्वारा, न सुधरने वाले दुष्टों और अत्याचारियों को दुष्टता के लिए छोड़ दे, उनके लिए कोई व्यवस्था न करें, वह लोकधर्म नहीं व्यक्तिगत साधना है।'

व्यक्ति-समाज का भाव संबंध

व्यक्ति और समाज का भाव संबंध हार्दिक है—होना चाहिए। मूल्यों का निर्माता व्यक्ति होता है और मूल्यगत आचार तथा नियमों की अवधारणा समाज करता है। नियमों के अनुरूप आचरण, नियमन और संशोधन समाज करता रहता है। समय, स्थिति और आवश्यकता के अनुसार व्यक्ति मूल्यों में वृद्धि तथा नयापन लाने के लिए उत्सुक होते हैं लेकिन मान्यता और अंतिम स्वीकृति उन्हें समाज ही देता है। कभी व्यक्ति अपने द्वारा निरूपित, आविष्कृत तथा प्रस्तुत नियमों और मूल्यों के लिए रुकता है, प्रतीक्षा करता है और आगे बढ़ता है। कभी दीर्घकाल तक चुनौती झेलने के लिए प्रस्तुत होना पड़ता है। कभी भर्त्सना, अपमान तथा बहिष्कार का सामना करना पड़ता है। कभी हिंसा की आग में मुस्कुराते खड़े रहना पड़ता है। इतना सब कुछ झेलकर भी नियम तथा मूल्यों की स्थापना का कार्य व्यक्ति करता ही रहता है और उनके अनुरूप सामान्य सामाजिक आचरण का आग्रह समाज में पहले ही रहता है।

व्यक्ति यहां दूसरे का विचार करता है। दूसरे के चेहरे में ही अपनी अस्मिता को पहचानता है। 'मैं' के अधिकार का दावा तो सामान्य जैविक प्रेरणा है, 'मैं' से इतर की पहचान और स्मरण मनुष्यता का निधान है। दूसरे के स्वतंत्रता की कल्पना और उसका स्वीकार वही व्यक्ति कर सकता है जिसका आत्मचैतन्य विकसित हो गया है। यही वह बिन्दु है जो मानव को पशु से पृथक् कर उसे महासत्ता प्रदान करता है मानवत्व की।

उन्नति की दिशा में

जो जैसा है उसे वैसा ही मान लेना यह पशु स्वभाव है, लेकिन जो जैसा है वैसा ही नहीं वल्कि जैसा होना चाहिए वैसा करने का प्रयत्न मनुष्य की अपनी विशिष्टता और पहचान है। असंगत, स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित भावनाओं से व्यक्ति का जीवन जव परिचालित होता है तव वह पशु-भाव में ही जीता है। लोभ, स्वार्थ सहजात मनोवृत्ति है जो पशु और मनुष्य में समान है। लेकिन औदार्य, पर दुःख संवेदना पशु में कहाँ? यह मनुष्य की अपनी विशेपता है। स्वार्थ के लिए दूसरे का अधिकार हड़प लेना पशु व मनुष्य में समान है लेकिन दूसरे के लिए अपने आपका उत्सर्ग कर देना, स्वयं कष्ट सहकर दूसरे को सुविधा उपलब्ध करा देना, खुद रोकर दूसरे को हंसा सकना मनुष्य की विशेषता है। इसी प्रकार आहार, निद्रा, भय आदि धरातल से ऊपर उठकर औदार्य, दया, तप, त्याग, साधना मनुष्य की विशेषता है। विवेक, कल्पनाशीलता, संयम मनुष्यता है।

व्यक्ति में दो प्रकार के भाव होते हैं—जड़ और चेतन! यही समाज में भी संक्रमित होते हैं। जड़भाव उसे अधोगामी वनाता है, गतिशून्य जीवन देता है, जवकि चेतनभाव ऊर्ध्वगामी वनाता है गति की शक्ति देता है। मनुष्य दूसरों के साथ जितना अधिक तादात्म्य स्थापित कर सकता है उतनी उसमें मनुष्यता की मात्रा अधिक और 'मनुष्य' होने की संभावना वलवती होती है।

समाज शक्ति का भाव

समाज इस संवाद की स्थिति को उत्पन्न करता है तो नैतिक आचरण के सामान्य नियमों का निरूपण करता है, व्यवस्था की स्थापना करता है और आचरण का आग्रह धरता है। जो समाज विकासमान होता है और जिसे आत्मभान होना है उसी समाज में परिपूर्ण व्यक्तित्व का विकास संभव है। वंधा हुआ, असहिष्णु समाज व्यक्ति को भी मुक्तता प्रदान नहीं कर सकता। स्वतंत्र समाज और मुक्त व्यक्ति न केवल परस्परपूरक हैं अपितु एक-दूसरे की शक्ति भी वढ़ाते हैं। स्वतंत्रचेता व्यक्ति समाज से स्वतंत्र नहीं समाज में आजाद होता है और समाज होता है वर्धनशील, गतिमान। यों, स्वतंत्रता मानव मन का नहीं—सामाजिक और पर्यायी रूप में वैचलिक आत्मा का पुंज है।

अपनी वैयक्तिक चेतना और अस्मिता को संभालकर व्यक्ति जव अपने आप को 'महाएक' के प्रति समर्पित कर देता है तब 'मनुष्य' कहलाता है। 'महाएक' की साधना के लिए व्यक्ति की नहीं समाज की साधना की आवश्यकता होती है। इस साधना के अभाव में सिद्धि नहीं मिलेगी शांति और सहभाव की। इस के बिना संसार की मार-काट, नौच-खसोट, झगड़े-टंटे, युद्ध-अकाल, हत्या-खून खरावी नहीं रुकेंगे, मनुष्य के नाखून और दाढ़ें नए-नए अस्त्र-शस्त्रों के रूप में खूंखार वनते रहेंगे। मनुष्य एक है; विभेद तो ऊपरी है, वाह्य है। मनुष्य की इस महान एकता को उपलब्ध करने के लिए तमाम संकीर्ण स्वार्थों की होली जलानी पड़ेगी। क्षणिक आवेगों का दमन करना पड़ेगा। अशुचिमय वासनाओं का संयमन सीखना होगा। गलत पद्धति का निरसन कर आत्मधर्म का विवेकी जागरण करना होगा। यह मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है, उससे वड़ा कुछ भी नहीं है—'पुरुषान्न परम् किंचित् सा काष्ठा सा परा गतिः।'

आज की जीवन पद्धति

आज का जीवन अव्यवस्थित हो गया है। एक भ्रष्ट व्यवस्था, सड़ी हुई यंत्रणा फैली है। इस समाज में एक मूल्यबोध-विहीन व्यक्ति या व्यक्ति समूह को मानव बनाना जरूरी है। भागवत में यह बताया गया है कि धन से, प्राण से, मन से, वचन से, कर्म से मनुष्य अपनी देह के लिए, पुत्र-पौत्रादि के लिए उन्हें सम्पूर्ण मानव समाज से अलग समझ कर जो कुछ भी करता है वह असत् होता है, परन्तु इन्हीं स्थूल वस्तुओं से और रागप्रवण मनोवृत्तियों से जब वह 'सत्' हो जाता है; ऐसा कर्म किसी खण्ड की नहीं बल्कि 'पूर्ण' की सेवा में नियुक्त होता है और स्नेह से सबके मूल का सिंचन करता है। भागवत की वाणी है—

यद् युज्यतेऽसु वसु कर्म मनोवचोभिर्देहात्म जादिषु
नृभि स्तदसत् पृथक्त्वात्।
नेदैव सद्भवति चेत् क्रियतेऽपृथक्त्वात्
सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत्॥

श्रीमद् भागवत 8/9/29

व्यक्ति-समाज-आन्तर सम्बन्ध

इस युग में केवल शुभ बुद्धि का विकास होने से ही काम नहीं चलेगा, उस बुद्धि के प्रकाश को आचरण में उतारना होगा। इसके लिए आर्थिक तथा राजनीतिक शक्तियाँ ऐसे लोगों के हाथ में होनी चाहिए जो अधिक-से अधिक शुभ बुद्धि-विवेक सम्पन्न है और उनमें उसे व्यवहार में कार्यान्वित करने की—कर सकने की शक्ति, दृढ़ता और चाह भी भरपूर मात्रा में हो। उपनिषद् में एक सूक्त है—जिसे पाकर मैं 'अमृत' नहीं बन सकती उसे लेकर क्या करूंगी—'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम्!'

हमारा व्यक्ति जीवन और समाज जीवन महान का आदर करना सीखे, ज्ञान के प्रति श्रद्धावान हो, शोभन के प्रति प्रेम बढ़े यह वांछनीय है। यहीं से व्यक्ति और समाज के बीच स्वस्थ आंतर-संबंधों का विकास संभव हो सकेगा। व्यक्ति अपनी चेतना को समाज में रखें और समाज को अर्पित कर दे। समाज व्यक्ति से शक्ति पाये और व्यक्ति को शक्तिमान बनाए यह भी जरूरी है। समूह में जीने की प्रेरणाओं का जितना विकास होगा, उतना यह काम आसान होगा। वैसे तो यह सीधी चढ़ान है लेकिन पारस्परिक सहयोग, समन्वय और समनुयोग द्वारा संभव है। एक ही वैयक्तिक सुख दुःख का भाव व्यक्तिगत होता है तब छोटा हो जाता है लेकिन सामाजिक मंगल से नियंत्रित-प्रभावित होता है तो सामाजिक कल्याण का जनक होने के कारण महान् बन जाता है।

□

—अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
कला विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय
शाहादा (धूलिया, महाराष्ट्र) 425 409

सामाजिक संस्थाएं एवं समाज

□

श्री राजीव प्रचण्डिया, एडवोकेट

व्यक्ति विम्ब है और समाज उसका प्रतिविम्ब। समाज निर्माण में व्यक्ति का योगदान समाहित है। यदि व्यक्ति का व्यक्तित्व विनाश/विकास पर आधारित है तो समाज का स्वरूप भी तदनुरूप होगा।

संस्था समाज के उन व्यक्तियों का समुदाय है जो निर्णीत सद् विचार एवं उद्देश्य की पूर्ति के लिये स्वयं को समर्पित करते हैं। संस्था का स्तर किसी भी कोटि का हो वह समाज का ही एक अंग माना जाएगा। आज समाज में विखराव, टूटन, हताशपन और द्वेष-कटुता परिलक्षित है, इन सब का उत्तरदायी संस्था नहीं मूल में व्यक्ति ही है। जो संस्था निष्काम साधना से सम्पृक्त है वह समाज को विकास के उत्तुङ्ग शिखर पर ले जाने में सर्वथा सक्षम है। यदि हम दूर-दूर तक नजर दौड़ाएँ तो बहुत कम संस्थाएँ ही ऐसी होंगी जहाँ मात्र सच्चा समर्पण एवं सेवा भाव ही झलकेगा और यह भी तय है कि जहाँ समाज में ऐसी संस्था होगी वहाँ समाज विकास-पथ पर होगा।

बदलते परिवेश में किसी भी संस्था के लिए यह आवश्यक है कि वह व्यक्तिनिष्ठा से ऊपर उठकर तटस्थता से अनुप्राणित विग्रहात्मक परिस्थितियों को सुलझाने में अपनी भूमिका का निर्वाह करे। समाज, राष्ट्र और धर्म का जो हित हो उसे प्राथमिकता देते हुए दृष्टिकोण में समग्रता-समता एवं विशालता-विराटता का समावेश परम अपेक्षित है। संकीर्णताओं/आग्रहों के घेरों से निकलना होगा।

आज की जनभावना ही कुछ ऐसी हो गई है कि पद-लोलुपता एवं अहंकारिता की होड़ सी लगी हुई है। ये दोनों ही समाज एवं संस्था के लिए एक ऐसा कैन्सर हैं जो कुछ दूर/देर चलने के उपरान्त एक विस्फोटक रूप में फूटता है, तब न कोई संस्था सञ्जीवित रह पाती है और न समाज ही उत्थित हो पाता है जिसका साक्षात् परिणाम है कि आज पल-पल में संस्थाएँ बन और बिगड़ रहीं हैं संस्था के आदर्श को विकृत कर रही हैं। जिस संस्था की नीवें कैंसर जैसी आधारशिला पर टिकी हों, उनका हाल तो ऐसा होना ही है। वे समाज को विद्रोह एवं विखराव के सिवाय और क्या दे सकेंगी। आज समय आ गया है कि हम इस नासूरी ढाँचे को जो क्षण प्रतिक्षण चरमरा रहा है, उसे भूमिसात कर जागरूक, रचनात्मक संस्थाओं का निर्माण कर अपने अनुभवों, ज्ञान-राशि से समाज को एक नई दिशा दें।

किसी भी संस्था का यह परम कर्त्तव्य है कि वह समाज की छोटी से छोटी समस्याओं का भी उपयोगी एवं सुन्दर समाधान प्रस्तुत करने में अपनी शक्ति को खपा दें ताकि ये छोटी लगने वाली समस्याएँ विकराल रूप धारण न कर सकें। जो संस्था छोटे से छोटे स्तर के प्राणी का सम्मान करती है, उसके स्वाभिमान को ठेस न पहुँचाती हों, वह निश्चय ही समाज के लिए और स्वयं अपने लिए खुशिहाली का वातावरण प्रस्तुत करती है। आज समाज में ऐसी ही संस्थाओं की आवश्यकता है क्योंकि संस्थाएँ ही एक ऐसा माध्यम है जो समाज को, व्यक्ति को गिरा/उठा सकने में समर्थ हैं। वास्तव में सामाजिक संस्थाओं का समाज के प्रति दायित्व असन्दिग्ध है। □

'मंगल कलश'
394 सर्वोदय नगर, आगरा रोड, अलीगढ़ (उ.प्र.) 202001

श्रमण संस्कृति के सजग प्रहरी श्री गणेशाचार्य की जन्म शताब्दी पर

श्री केशरी चन्द सेठिया

भारतवर्ष की इस पावन पुण्य धरा पर अनेक ऋषि-मुनि महर्षि हुए हैं। भारतीय श्रमण शृंखला में भी अनेक वरिष्ठ संत हुए हैं। अनेक धर्मों के धर्माचार्यों ने सत्य, अहिंसा का प्रचार प्रसार किया है। जैन धर्म एक जीवन्त प्राचीन धर्म के रूप में अपना एक विशिष्ट स्थान बनाये हुए है। प्रभु महावीर के शासन काल में भी अनेक सम्प्रदायों के धर्माचार्यों ने अहिंसा के दिव्य सन्देश को जन जन में झोंपड़ों से महलों तक पहुँचाया है। उसी परम्परा में हुक्म सम्प्रदाय में सप्तम् आचार्य श्री गणेशीलालजी महाराज हुए हैं।

संवत् 1947 की श्रावण कृष्णा तृतीया को मेवाड़ की वीर भूमि उदयपुर में इस महान् विभूति का जन्म हुआ था। पिता श्री साहबलालजी मारू माता श्री इन्द्राबाई की कुक्षि से उत्पन्न हुआ था।

युवावस्था में ही आपको माता, पिता बहन व धर्मपत्नि का हृदय विदारक वियोग सहना पड़ा। प्रारंभ से ही आपको अपने सुसंस्कारी परिवार से धर्म के प्रति अनुराग, श्रद्धा हो गयी थी। वियोग और श्री मज्जैनाचार्य श्री जवाहर की धर्म देशना से आप अत्यधिक प्रभावित ही नहीं हुए आपकी सुप्त वैराग्य भावना जाग उठी।

सम्वत् 1962 में अपनी जन्म भूमि उदयपुर में मार्गशीष कृष्णा प्रतिपदा को श्रद्धेय श्री मोतीलालजी म. सा. के मुखार विन्द से जैन प्रवर्ज्या अंगीकार की। जैन जगत के सूर्य क्रान्तिकारी श्री जवाहर के सानिध्य और देखरेख में आपने विद्याध्ययन प्रारम्भ कर दिया। मेधावी अभ्यासी के रूप में आपने अल्प समय में ही शास्त्रों का गहन अध्ययन कर लिया। फिर भी आपने अपना अध्ययन निरन्तर जारी रखा। अन्य अन्य धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन किया। नूतन ज्ञान, प्राप्त करने की पिपासा उनमें थी। आपको राजस्थानी, हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी, फारसी का अच्छा ज्ञान था।

आपकी गुरु-भक्ति, सेवा, अनुशासन, आत्म-कल्याण जन-कल्याण, संयम और साधना, कठोर क्रिया पालन, अन्धविश्वास व आडम्बर से दूर तत्वदर्शी थे। यही कारण था कि 23 चातुर्मासों में आपश्री को आचार्य जवाहर ने अपने पास रखा। वे उनके निकटतम प्रिय शिष्यों में थे।

सद् धर्म का प्रचार—तेरापंथी-सम्प्रदाय में उस समय दया-दान सम्बन्धी कुछ ऐसी मान्यताओं का प्रचार हो रहा था जिनसे जैन धर्म के मूल सिद्धान्त अहिंसा पर ही कुठाराघात होता था। श्री जवाहराचार्य और आपके हृदय में इसकी मार्मिक पीड़ा थी। जिस मूलभूत सिद्धान्त पर हमारे धर्म की नींव है, उसी अहिंसा पर इतना भ्रान्तिपूर्ण प्रचार। जिसका थली प्रान्त केन्द्र स्थान था। अपने गुरु की भांति आपने भी शास्त्रों के अकाट्य तर्क द्वारा इसका पुरजोर खण्डन किया। उस समय अनेक विद्वान मुनि, आचार्य, स्थानवासी समाज में तथा

अन्य सम्प्रदायों में थे किन्तु यह बीड़ा केवल वे ही उठा सके। इसके लिए आपको अनेक कठिन परिषहों का सामना करना पड़ा।

आचार्य श्री जवाहरलालजी म. सा. का स्वास्थ्य प्रतिकूल रहने लगा। आपने देखा कि यही समय है कि मैं अपने उत्तराधिकारी के रूप में किसी मुनि को नियुक्त कर दूं ताकि शासन की वागडोर संभाल सके। मुझे भी कुछ विश्राम मिले और पूरा समय आत्म साधना में लगा सकूं। कुछ वयोवृद्ध श्रावक तो इस पक्ष में थे ही कि अब समय आ गया है कि आचार्य श्री अगर अपने उत्तराधिकारी की घोषणा कर दें तो उपयुक्त रहेगा। और आचार्य श्री ने जावद में विशाल जन मेदिनी के समक्ष संवत् 1990 की फाल्गुन शुक्ला तृतीया को युवाचार्य पद के लिए आपके नाम की घोषणा कर इस गौरवमय पद की चादर ओढ़ा दी।

भीनासर में संवत् 2000 की आषाढ़ शुक्ला अष्टमी दिनांक 10 जुलाई, 1943 का दिन जैन जगत के लिए बड़ा अंधकार पूर्ण था। आचार्य श्री जवाहर ने सायं 4.20 बजे नश्वरदेह को त्याग कर महाप्रयाण कर दिया। उस दिन दो दो सूर्य अस्त होते देखे गये। एक आकाश में लुप्त हो रहा था एक भूमण्डल पर।

दूसरे दिन 11 जुलाई, 1943 को भीनासर में आचार्य पद की गरिमामयी चादर ओढ़ाकर संत व सतीवृन्द ने आपके नेतृत्व में रहने की प्रतिज्ञा की। विशाल जन मेदिनी ने आपके प्रति सम्मान श्रद्धा, भक्ति का परिचय दिया। अब आप पर पूर्ण रूप से संघ, समाज और सम्प्रदाय का दायित्व आ गया। जिसे आपने अपनी सम्पूर्ण शक्ति से निष्ठापूर्वक निभाया।

आचार्य पद प्राप्त करने के पश्चात् आपका प्रथम चातुर्मास सम्वत् 2000 का देशनोक में कावा (चूहों) का करणी देवी का मंदिर जो संसार प्रसिद्ध है, में किया। यह बीकानेर राज्य का एक छोटा सा गांव है लेकिन निष्ठावान श्रावकों की विनती को आप नहीं टाल सके। स्थान छोटा ओर दर्शनार्थियों की अपारमेदिनी। पूरे भारत से आने वालों की भीड़। वहाँ के लोगों का हृदय विशाल था। सबने अपने अपने घरों को आंशिक रूप से खाली कर दिये ताकि दर्शनार्थी सेवा, श्रवण का लाभ ले सके। चारणों की यह भूमि तीर्थ स्थान बन गई। पंक्तियों का यह लेखक भी अपने परिवार के साथ मौजूद था। वहां का भव्य दृश्य देखकर हृदय भाव विभोर हो गया। यह आचार्य श्री का अतिशय था कि गागर में सागर समा गया। उस समय करणी देवी के मंदिर में पशुबलि चढ़ाई जाती थी। अतः आपने चारणों के लिखित पत्र कि अब पशुबलि नहीं चढ़ायेंगे आपने चातुर्मास की स्वीकृति दी थी। अहिंसा के मसीहा के पदार्पण से मूक पशुओं को अभय दान मिला।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रमुख संत आचार्यों ने 5 अप्रेल, 1933 के अजमेर साधु सम्मेलन में जिन-जिन ठहरावों को पारित किया था, शनैः शनैः उसमें शिथिलता आने लगी। स्थान-स्थान से स्वच्छंदता उल्लंघन के समाचार आने लगे। समाज के वरिष्ठ श्रावकों ने, श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कान्फ्रेंस ने भागीरथ प्रयत्न कर सादड़ी में पुनः साधु-सम्मेलन के लिए अधिकारी मुनिवृन्द को राजी कर लिया। स्थानकवासी सम्प्रदाय के 22 सम्प्रदायों के 53 प्रतिनिधि एवं 341 साधु एवं 768 साध्वी उपस्थित थे। सम्मेलन में अनेक अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रस्ताव साधु मर्यादा, निर्मल संयम-साधना, अनुशासन आदि के लिए स्वीकृत हुए। पूर्व के परिणाम और अनुभव पर आपने सशर्त उसमें सम्मिलित होने की स्वीकृति दी। सम्मेलन का नेतृत्व व सुचारु रूप से संचालन करने के लिए एक स्वर से शांति-रक्षक के रूप में चुने गये। पं. रत्न श्री मदनलालजी म. सा. आपके सहायक के रूप में

[illegible] और [illegible] को [illegible] करने के लिए [illegible] के विचार, जिनके [illegible] आपने [illegible] लिए [illegible] हो [illegible] की। [illegible] के लिए [illegible] घोषित कर दिया।

[illegible] मुनि [illegible] ने एक [illegible] प्रकट की। [illegible] एक समाधान रखा कि पूज्य [illegible] म. सा. [illegible] के [illegible] पद पर सुशोभित किया जाए। [illegible] और [illegible] किया गया कि [illegible] म. सा. की वृद्धावस्था को देखते हुए आपको और भी [illegible] म. सा. को 'उपाचार्य' बनाया और [illegible] के साथ संचालन का कार्य [illegible] गये। इस भूमिका में [illegible] आने वाले [illegible] पूज्य [illegible] म. सा. ने बड़ी दूरदर्शिता और विशालता का परिचय दिया। सबके प्रेम, स्नेह और आग्रह भरी विनती को [illegible] पर कि सब संघ ने [illegible] और आप श्री ने सबकी भावना का समादर करते हुए अपनी स्वीकृति दे दी। भारत में राज्यों के विलीनीकरण के समय उदयपुर के महाराणा को महाराज प्रमुख बनाया। उसी तरह श्रमण-संघ ने आपको 'उपाचार्य' पद पर आसीन किया। किन्तु पीछे कुछ ऐसी घटनाएं घटी, स्वच्छंदता, अनुशासनहीनता आदि ने उपाचार्य श्री के मानस को झकझोर दिया। आपने बड़े धैर्य और गंभीरता के साथ प्रयत्न किया, कि किसी तरह श्रमण संघ की एकता अखण्ड रहे, जिसके लिए सं., आचार्यों, उपाध्यायों, प्रवर्तकों आदि ने अपने पद के साथ पूर्ण रूप से अपने को समर्पित कर दिया था। इतर समाज के समक्ष स्थानकवासी समाज का श्रमण वर्ग हंसी का पात्र न बने। परिपूर्ण प्रयत्न के बाद भी जब आपने देखा कि महावीर के शासन में सर्वोच्च साधुत्व को अंगीकार किया, जिस आत्म-साधना व कल्याण के लिए संयम मार्ग को चुना उसी में विघ्न पड़ रहा है। तो सांप की केंचुली की तरह इतने बड़े, श्रमण वर्ग के समूह के शासन से अपने को मुक्त कर लिया। पदवी के प्रति आसक्ति तो उनमें कभी थी ही नहीं। सारे स्थानकवासी समाज पर एक वज्रपात हो गया। शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित, चातुर्मास, विहार आदि एक आचार्य की नेश्राय में की योजन सफल नहीं हो सकी। अगर इनकी अहमियता पर उस समय निर्णय ले लिया जाता तो शायद यह दिन देखना नहीं पड़ता।

विशाल चतुर्विध संघ, साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका ने आपके नेतृत्व में रहने की विनती की और निरुपाय आपको आचार्य पद पर पुनः आसीन होने के लिए विवश कर दिया। आपने भी चतुर्विध संघ की भावना स्नेह विश्वास और सहयोग के कारण पुनः हुक्म सम्प्रदाय की बागडोर संभाल ली।

आपके प्रवचन आध्यात्मिकता, सरल, हृदयग्राही, राष्ट्रीयता से ओतप्रोत होते थे। जनता मंत्रमुग्ध आप के प्रवचनों का लाभ लेती थी।

बीकानेर के वर्षाकाल में सेठिया कोटड़ी में आप विराज रहे थे। प्रवचन का प्रारम्भ विनयचंद चौबीसी स्तवन की कड़ियों से प्रारम्भ होता था। अंत में चौपाई। सती अंजना की चौपाई का वांचन करते तो श्रोताओं की आंखों में अश्रुधारा बह उठती। कई पति-पत्नियों के झगड़े मिट गये।

आज भी उनका वह दृष्टांत—मराठी के संत तुकाराम जो बहुत ही शांत स्वभाव के थे किन्तु वे जितने शांत प्रकृति के थे उनकी पत्नी उतनी ही उग्र, क्रोधीले स्वभाव की थी। बात बात पर झिड़क देती। एक दिन

आप कुछ विलंब से पहुँचे । हाथ में एक गन्ना था । आव देखा न ताव । उस गन्ने को ही उनकी पीठ पर दे मारा । गन्ने के पांच टुकड़े हो गये । संत तुकाराम ने कहा—भाग्यवान् तुमने सबके लिए बराबर का हिस्सा कर दिया । दो हमारे लिए और तीन टुकड़े अपने बच्चों के लिए । और मुस्कुराकर पूछने लगे कहीं तुम्हारे हाथ में तो चोट नहीं आई ? कठोर से कठोर हृदय भी हिमवत पिघल जाता वह तो फिर भी स्त्री थी ।

57 वर्ष के निर्मल, कठोर, आत्म साधना काल में अनेक उपलब्धियां प्राप्त की । लाखों मानवों को नैतिक, धार्मिक व मानवता का पाठ पढ़ाया । कठोर साधना प्रखर तेजस्वी व्यक्तित्व के धनी, अल्प मृदु भाषी, सहज स्नेही, विनम्र व सरलता की प्रति मूर्ति थे । आप श्री के संयम साधना, ज्ञान ध्यान, विश्वबन्धुत्व की भावना से चारों और जन जागरण होने लगा । आपकी अमृतमय वाणी का जिसने भी श्रवण किया वह चुम्बक की तरह स्वतः ही खिंचा चला जाता । आपके धारावाहिक प्रवचनों के एक एक शब्द वैराग्य पूर्ण व आत्मसात की भावना से ओतप्रोत होते थे । जहाँ आप विचरे चातुर्मास किये जनता धन्य हो गई ।

इस महापुरुष आत्म-कल्याण, जन-कल्याण, संठगन और धर्मप्रचार करते करते 11 जनवरी, 1963 को इस नश्वर देह को त्याग कर स्वर्ग सिधारे । जिस वीर भूमि की माटी में जन्में उसी माटी में विलीन हो गये ।

उत्तराधिकारी के रूप में आये आचार्य श्री नानेश ऐसा लगता है कि गुरुवर की सारी ज्योतिपुंज इनमें समाहित हो गई । आपका जीवन एक खुली किताब है । ज्ञान और क्रिया का एक अनुपम संगम है । शास्त्रोक्त 36 गुणों के धारक आचार्य भगवान् वीर शासन में श्रमण-परम्परा के एक ज्वाजल्यमान नक्षत्र हैं ।

गुरु की अभिलाषा को आपने पूरा किया । एक आचार्य की नेश्राय में शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित, चातुर्मास विहार आदि को मूर्त रूप दिया । यही कारण है कि आपकी नेश्राय में 260 से भी अधिक मुमुक्षु भाई-बहनों को अपने मुखारविन्द से निग्रंथ परम्परा में दीक्षित कर महावीर के मार्ग को दीपा रहे हैं ।

जैन जगत के इतिहास में आचार्य, उपाचार्य, आचार्य श्री गणेशाचार्य का नाम यशस्वी धर्माचार्यों की अग्रगण्य पंक्ति में चिर स्मरणीय रहेगा । यह हमारा परम सौभाग्य है कि उस महामानव की दिनांक 11 जुलाई, 1990 को जन्म शताब्दी मनाई हैं । युगों युगों तक उनकी कीर्ति ध्वजा फहराती रहेगी । भारत की जनता को प्रतिबोध देने वाले इस श्रेष्ठ पुरुष के गुणगान करने की क्षमता इस लेखनी में कहाँ ।—भक्ति के श्रद्धा सुमन श्री चरणों में विनयवत सादर समर्पित करते हुए अपने को धन्य मानते हैं । मेवाड़ का यह धर्मवीर हमारा जन-जन का प्रेरणा श्रोत बना रहे यही कामना है ।

□

मंत्री, श्री साधुमार्गी जैन संघ
11 रंगनायन एविन्यू मद्रास—10

सामाजिक संस्थाओं का समाज के प्रति दायित्व

□

श्री जयचन्द लाल कोठारी

पशु पक्षी आदि प्राणियों में भी प्रकृति ने सह अस्तित्व की मर्यादाएं न्यूनाधिक अंशों में प्रवृ विकसित की हैं, किन्तु सृष्टि के जीवजगत में मानव जाति सर्वाधिक संगठित एवं विकसित है। उसकी व्यवस्था की अद्भुत विशेषताओं का उसके सर्वाङ्गीण विकास एवं द्रुततर प्रबुद्धता की गति में बहुत ब है। अतीत पर दृष्टि डालने पर आदि मानव से आज के वैज्ञानिक मानव तक की इतिहास यात्रा में उसक पद्धति अर्थात् सामाजिक परिवेश का महत्व स्पष्ट हो जाता है। आज के चिन्तन का विषय सामाजिक और उनका समाज के प्रति दायित्व है।

हम मानव अकेले नहीं रह सकते। अंग्रेजी में भी मनुष्य की परिभाषा 'सामाजिक प्राणी' (Animal) ही की गई है। यद्यपि मात्र स्वयं में अर्थात् अपने एकाकीपन में भी पूर्णता की अनुभूति कर व्यक्ति ईश्वरत्व की ओर उन्मुख हो रहा चरित्र होता है, किन्तु यह पथ भी समाज के चौराहे में ही निक

चूंकि हम समाज के मध्य जन्म लेते रहते और जीते हैं अतः उसका अविभाज्य अंग होने के ना प्रति कर्त्तव्यों का बोध होना स्वाभाविक है। समाज हमारे सुख सौहार्द पूर्ण जीवन और हमारे आत्मिक सिक, बौद्धिक एवं शारीरिक विकास में सतत योगदान करता है। अतएव सुशील एवं प्रबुद्धजन शिष्ट होने से अपनी ओर से उसमें कुछ न कुछ योगदान करने की कामना रखते हैं। व्यक्ति की यही भाव व्यक्तियों के साथ मिलकर इस विकास यात्रा में योगदान हेतु उसे उत्प्रेरित करती है। फलस्वरूप संस्थ जन्म होता है।

समाज एक समूह होता है जिसमें अल्प और अधिक बुद्धि तथा सामर्थ्य से युक्त विभिन्न इकाइ समायोजन होता है और बहुसंख्या स्वयं अपने हित के प्रति भी उदासीन होती है। एतदर्थ विशिष्ट लोग क्षमताओं से अनेकों या सबको लाभान्वित करने की शुभकामना रखकर संस्थाओं का गठन करने क करते हैं।

कभी कभी तो अद्भुत क्षमताओं से युक्त व्यक्ति स्वयं में ही इतना समर्थ सिद्ध होता है कि स संस्था बन जाता है। प्राचीन गुरुकुलों के [illegible] महापुरुषों तथा निकट वर्त महात्मा गांधी या रजनीश जैसे व्यक्तित्व [illegible] है [illegible] से उद्भूत या संयुक्त संस्थायें में तो व्यक्ति प्रधान होती हैं पर शनैः शनैः [illegible] कर लेती [illegible] किन्तु मु संस्थ [illegible] ों के समुदाय से बनती हैं [illegible] है

सामाजिक संस्थाओं को मुख्यतः चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) धार्मिक संस्थायें (2) शिक्षण संस्थायें (3) प्रशिक्षण संस्थायें और (4) सेवा संस्थायें।

धार्मिक संस्थायें—

धर्म समाज को नैतिक, मर्यादित और संगठित स्वरूप में बनाये रखने वाला तत्त्व है अतः ऐसी संस्थाओं का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य की आत्मिक उन्नति पर केन्द्रित रहता है, किन्तु मोक्ष का मार्ग भी चूंकि संसार के चौराहे में से होकर ही है, संसार की पूर्ण उपेक्षा भी सम्भव नहीं है। अतः धार्मिक संस्थायें भी व्यक्ति नैतिक एवं मर्यादित बना रहे इस ओर ध्यान अवश्य देती हैं। प्राचीन काल में तो भारतीय परम्परा यही रही है कि हर व्यक्ति प्रतिक्षण अपनी हर क्रियाकलापों में धर्म से जुड़ा ही रहे किन्तु आज भारतीय संस्कृति अपने मूल स्वरूप से जुड़े रहने का बोध व्यक्ति को कराने में कठिनाई अनुभव कर रही है। अस्तु वर्तमान में धार्मिक संस्थाएं अपने अपने विशिष्ट परिकर में अपने गुरुओं की प्रेरणा के वरद हस्त के नीचे अपने सहधर्मियों की धार्मिकता को बनाये रखने हेतु ही कार्यरत हैं। वस्तुतः धार्मिक संस्थाओं का समाज के प्रति इतना ही दायित्व बनता है कि वे अपने यत्नों द्वारा अपने समुदाय को धर्म की शिक्षा, प्रेरणा और सरसपुष्टता से युक्त बने रहने का उद्बोधन तो निश्चय ही दें किन्तु एक लक्ष्मण रेखा तक ही। किसी अन्य धर्म या सम्प्रदाय की अनावश्यक आलोचना का कटुतापूर्ण वैर विरोध का हेतु न बने, इस ओर सजगता रखें।

शिक्षण संस्थायें—

किसी वर्ग विशेष का समाज अपने में से श्रीमंतों का आर्थिक योगदान लेकर शिक्षण संस्थानों की स्थापना करता है ताकि बच्चों की शिक्षा दीक्षा सुचारू रूप से सम्पन्न हो सके। प्राचीन परम्परा में तो गुरु ही उस शिक्षण संस्थान की आत्मा होता था और वह अपने विवेक द्वारा पात्रतानुसार उचित शिक्षा का प्रबन्ध करता था। किंतु अब न तो वैसे गुरु ही उपलब्ध हो पाते हैं न शिष्य ही। आज के युग का शिक्षण अर्थोपार्जन मात्र में ही जुड़ पाता है।

अंग्रेजों के आगमन के बाद से शिक्षा का सरकारीकरण हो गया और बंधे बंधाये पाठ्यक्रमों और निर्धारित नियमों की सीमाओं में शिक्षा का आकार प्रकार रूढ़ कर दिया गया। व्यक्तित्व को सुसंस्कृत तथा परिष्कृत करने का यत्न करने वाली पाठशालायें अब लुप्त होती हुई एक प्रजाति बनकर रह गई हैं। ऐसी धर्म-धुरीण शिक्षण संस्थायें विकसित होकर विज्ञान की उच्च शिक्षा व शोध तक पहुंच नहीं पाई और निरीह होकर रह गई। ये इतनी समर्थ नहीं होती कि अन्त तक अर्थात् उदर पूर्ति की क्षमता तक अपने विद्यार्थियों का साथ निभा सके अतः उनकी ओर विशेष आकर्षण हो नहीं पाया। यदि समाजों का ध्यान इस ओर जाये और इनसे निकले हुए छात्र-छात्राओं को नौकरी या व्यवसाय में जमा पाने में पहल कर सकें, चाहे अपने ही स्तर पर नहीं, तो इनका बड़ा सुन्दर उपयोग हो सकता है। आत्मा के साथ स्वस्थ शरीर और आर्थिक पक्ष का उपयुक्त संयोजन होना अनिवार्य है, यह तथ्य विचारणीय है। दूसरी ओर इस प्रकार की शिक्षण संस्थाओं को राज्याश्रय से विरक्त रह कर समाज हेतु सुसंस्कृत स्वस्थ और सुयोग्य छात्र-छात्राओं की पौध विकसित कर सौंपने का दायित्व वहन करना चाहिए। अब तो विभिन्न समाजों द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं की न तो उपयोगिता रह गई है और न ही आवश्यकता। कागजी सर्टीफिकेट पेट के साथ इस कदर जुड़ गये और नौकरी पाने में इनकी अनिवार्यता इतनी स्वीकृत हो गई कि यही फार्मूला सर्वमान्य हो गया।

सामाजिक संस्थाओं का समाज के प्रति दायित्व

श्री जयचन्द लाल कोठारी

पशु पक्षी आदि प्राणियों में भी प्रकृति ने सह अस्तित्व की मर्यादाएं न्यूनाधिक अंशों में प्रवृत्तिरूपेण विकसित की हैं, किन्तु सृष्टि के जीवजगत में मानव जाति सर्वाधिक संगठित एवं विकसित है। उसकी समाज-व्यवस्था की अद्भुत विशेषताओं का उसके सर्वाङ्गीण विकास एवं द्रुततर प्रबुद्धता की गति में बहुत बड़ा हाथ है। अतीत पर दृष्टि डालने पर आदि मानव से आज के वैज्ञानिक मानव तक की इतिहास यात्रा में उसकी जीवन पद्धति अर्थात् सामाजिक परिवेश का महत्त्व स्पष्ट हो जाता है। आज के चिन्तन का विषय सामाजिक संस्थाओं और उनका समाज के प्रति दायित्व है।

हम मानव अकेले नहीं रह सकते। अंग्रेजी में भी मनुष्य की परिभाषा 'सामाजिक प्राणी' (Social Animal) ही की गई है। यद्यपि मात्र स्वयं में अर्थात् अपने एकाकीपन में भी पूर्णता की अनुभूति करने वाला व्यक्ति ईश्वरत्व की ओर उन्मुख हो रहा चरित्र होता है, किन्तु यह पथ भी समाज के चौराहे में ही निकलता है।

चूंकि हम समाज के मध्य जन्म लेते रहते और जीते हैं अतः उसका अविभाज्य अंग होने के नाते उसके प्रति कर्त्तव्यों का बोध होना स्वाभाविक है। समाज हमारे सुख सौहार्द पूर्ण जीवन और हमारे आत्मिक, मानसिक, बौद्धिक एवं शारीरिक विकास में सतत योगदान करता है। अतएव सुशील एवं प्रबुद्धजन शिष्ट नागरिक होने से अपनी ओर से उसमें कुछ न कुछ योगदान करने की कामना रखते हैं। व्यक्ति की यही भावना अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर इस विकास यात्रा में योगदान हेतु उसे उत्प्रेरित करती है। फलस्वरूप संस्थाओं का जन्म होता है।

समाज एक समूह होता है जिसमें अल्प और अधिक बुद्धि तथा सामर्थ्य से युक्त विभिन्न इकाईयों का समायोजन होता है और वहुसंख्या स्वयं अपने हित के प्रति भी उदासीन होती है। एतदर्थ विशिष्ट लोग अपनी क्षमताओं से अनेकों या सवको लाभान्वित करने की शुभकामना रखकर संस्थाओं का गठन करने की पहल करते हैं।

कभी कभी तो अद्भुत क्षमताओं से युक्त व्यक्ति स्वयं में ही इतना समर्थ सिद्ध होता है कि स्वयं ही संस्था वन जाता है। प्राचीन गुरुकुलों के अधिष्ठाता ऋषिगण, पूजा पद प्राप्त महापुरुषों तथा निकट वर्तमान में महात्मा गांधी या रजनीश जैसे व्यक्तित्व इसके उदाहरण हैं। ऐसे व्यक्तियों से उद्भूत या संयुक्त संस्थायें प्रारंभ में तो व्यक्ति प्रधान होती हैं पर शनैः शनैः सामान्य संस्था का आकार प्रकार ग्रहण कर लेती हैं। किन्तु मुख्यतया संस्थायें व्यक्तियों के समुदाय से बनती हैं और अभी के चिन्तन का स्पष्ट विषय यही है।

सामाजिक संस्थाओं को मुख्यतः चार भागों में विभक्त किया जा सकता है—(1) धार्मिक संस्थायें (2) शिक्षण संस्थायें (3) प्रशिक्षण संस्थायें और (4) सेवा संस्थायें।

धार्मिक संस्थायें—

धर्म समाज को नैतिक, मर्यादित और संगठित स्वरूप में वनाये रखने वाला तत्त्व है अतः ऐसी संस्थाओं का प्रमुख लक्ष्य मनुष्य की आत्मिक उन्नति पर केन्द्रित रहता है, किन्तु मोक्ष का मार्ग भी चूंकि संसार के चौराहे में से होकर ही है, संसार की पूर्ण उपेक्षा भी सम्भव नहीं है। अतः धार्मिक संस्थायें भी व्यक्ति नैतिक एवं मर्यादित वना रहे इस ओर ध्यान अवश्य देती हैं। प्राचीन काल में तो भारतीय परम्परा यही रही है कि हर व्यक्ति प्रतिक्षण अपनी हर क्रियाकलापों में धर्म से जुड़ा ही रहे किन्तु आज भारतीय संस्कृति अपने मूल स्वरूप से जुड़े रहने का वोध व्यक्ति को कराने में कठिनाई अनुभव कर रही है। अस्तु वर्तमान में धार्मिक संस्थाएं अपने अपने विशिष्ट परिकर में अपने गुरुओं की प्रेरणा के वरद हस्त के नीचे अपने सहधर्मियों की धार्मिकता को वनाये रखने हेतु ही कार्यरत हैं। वस्तुतः धार्मिक संस्थाओं का समाज के प्रति इतना ही दायित्व वनता है कि वे अपने यत्नों द्वारा अपने समुदाय को धर्म की शिक्षा, प्रेरणा और सरसपुष्टता से युक्त वने रहने का उद्‌वोधन तो निश्चय ही दें किन्तु एक लक्ष्मण रेखा तक ही। किसी अन्य धर्म या सम्प्रदाय की अनावश्यक आलोचना का कटुतापूर्ण वैर विरोध का हेतु न वने, इस ओर सजगता रखें।

शिक्षण संस्थायें—

किसी वर्ग विशेष का समाज अपने में से श्रीमंतों का आर्थिक योगदान लेकर शिक्षण संस्थानों की स्थापना करता है ताकि वच्चों की शिक्षा दीक्षा सुचारू रूप से सम्पन्न हो सके। प्राचीन परम्परा में तो गुरु ही उस शिक्षण संस्थान की आत्मा होता था और वह अपने विवेक द्वारा पात्रतानुसार उचित शिक्षा का प्रवन्ध करता था। किंतु अव न तो वैसे गुरु ही उपलव्ध हो पाते हैं न शिष्य ही। आज के युग का शिक्षण अर्थोपार्जन मात्र में ही जुड़ पाता है।

अंग्रेजों के आगमन के वाद से शिक्षा का सरकारीकरण हो गया और वंधे वंधाये पाठ्यक्रमों और निर्धारित नियमों की सीमाओं में शिक्षा का आकार प्रकार रूढ़ कर दिया गया। व्यक्तित्व को सुसंस्कृत तथा परिष्कृत करने का यत्न करने वाली पाठशालायें अव लुप्त होती हुई एक प्रजाति वनकर रह गई हैं। ऐसी धर्म-धुरीण शिक्षण संस्थायें विकसित होकर विज्ञान की उच्च शिक्षा व शोध तक पहुंच नहीं पाई और निरीह होकर रह गईं। ये इतनी समर्थ नहीं होती कि अन्त तक अर्थात् उदर पूर्ति की क्षमता तक अपने विद्यार्थियों का साथ निभा सकें अतः उनकी ओर विशेष आकर्षण हो नहीं पाया। यदि समाजों का ध्यान इस ओर जाये और इनसे निकले हुए छात्र-छात्राओं को नौकरी या व्यवसाय में जमा पाने में पहल कर सकें, चाहे अपने ही स्तर पर सही, तो इनका वड़ा सुन्दर उपयोग हो सकता है। आत्मा के साथ स्वस्थ शरीर और आर्थिक पक्ष का उपयुक्त संयोजन होना अनिवार्य है, यह तथ्य विचारणीय है। दूसरी ओर इस प्रकार की शिक्षण संस्थाओं को राज्याश्रय से विरक्त रह कर समाज हेतु सुसंस्कृत स्वस्थ और सुयोग्य छात्र-छात्राओं की पौध विकसित कर सौंपने का दायित्व वहन करना चाहिए। अव तो विभिन्न समाजों द्वारा संचालित शिक्षण संस्थाओं की न तो उपयोगिता रह गई है और न ही आवश्यकता। कागजी सर्टीफिकेट पेट के साथ इस कदर जुड़ गये और नौकरी पाने में उनकी अनिवार्यता इतनी स्वीकृत हो गई कि यही फार्मूला सर्वमान्य हो गया।

प्रशिक्षण संस्थायें—

ये संस्थान कम्प्यूटर, विज्ञान, सिलाई, कढ़ाई, पाकविज्ञान, संगीत कला आदि विशिष्ट व्यवसाय या कलाओं का प्रशिक्षण की भावना में खोले जाते हैं। इनका उद्देश्य यह होता है कि विद्यार्थी अपनी संतुष्टि व निजी जीवन की सुख शान्ति हेतु तो अपने सीखे हुए ज्ञान का उपयोग करें ही, आवश्यकतानुसार घर परिवार में अर्थलाभ हेतु भी अपनी क्षमताओं का यथोचित उपयोग कर सकें।

सेवा संस्थायें—

ऐसी संस्थाओं की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य है सीमित या विस्तृत दायरे में समाज की समयोचित सेवा की जा सकें। ये सामान्यतः एक ऐसे मिलन स्थल या मंच के रूप में विकसित होती हैं जहां विचार विमर्श कर उन्नति की संभावनाओं का प्रस्फुरण हो सके या तात्कालिक सहायता सेवा प्रदान की जा सके। ऐसी संस्थायें यदि सार संभाल अच्छी हो तो प्रायः बड़ी उपयोगी सिद्ध होती है। अकाल, बाढ़, भूकम्प आदि विभीषिकाओं या मेलों में जल सेवा, प्रवन्ध, जलों में अनुशासन रखने आदि उपयोगी सेवायें देती हैं। कभी कभी ये शिविर आयोजन कर धार्मिक शिक्षण का कार्य भी सफलता से सम्पन्न कर लेती हैं। योग्य लोगों को वृत्तियां, छात्र-वृत्तियां देकर आगे बढ़ाने का कार्य भी किया जाता है।

सामाजिक संस्थाओं का दायित्व—

1. समाज पर न्यूनतम अर्थभार डालें। कार्यकर्त्ता मितव्ययी बनकर कार्य संचालन करें किन्तु उपयोगी कार्यों में व्यवधान भी न आने दे।

2. जिस उद्देश्य से संस्था विशेष का गठन हुआ है, वह कार्य सुचारु सम्पन्न हो, इसकी सतत् चेष्टा रखी जाय।

3. समाज के अधिकतर लोग प्रायः उदासीन देखे जाते हैं अतः प्राथमिक या पूर्व कार्यकर्त्ताओं का विशेष दायित्व हो जाता है कि नवीन योग्य कार्यकर्त्ताओं को उचित प्रेरणा देकर कार्यशील बनायें और अपनी संस्था से सम्बद्ध करें।

4. कार्यकर्त्ताओं की गतिविधियां नियन्त्रित रखी जानी चाहिए ताकि श्रेष्ठ जन अपमानित अनुभव कर दूर होने की चेष्टा न करें। संविधान इतना सशक्त हो कि सही व्यक्ति को सही रूप में कार्य करने में अवरोध या विरोध दोनों ही का सामना न करना पड़े। उन्हें श्रम व निष्ठा से कार्य करने की सदा सुविधा प्राप्त हो।

5. संस्थाओं को केवल कार्यकर्त्ताओं का रमण स्थल बनने से बचाने का सर्वाधिक सुन्दर उपाय यह है कि ऐसे कार्यक्रमों का सतत् आयोजन होता रहे, जिनमें जनता से अधिकाधिक जुड़ाव व सम्पर्क बना रहे और संस्था कटी कटी, निस्पन्द और आत्मसीमित न रहे।

सामाजिक संस्थायें अधिकाधिक दायित्व निभाते हुए समाज के अधिकाधिक लोगों से सम्पर्क साधे रहकर पूर्ण सक्रिय, सफल और जीवन्त बनी रहें, यही मङ्गलकामना है।

□

—द्वारा पूनमचन्द जयचन्दलाल कोठारी
ओसवाल कोठारी मोहल्ला, बीकानेर-334 001

सामाजिक संस्थाएं बनाम समाज

□

उदय नागोरी, एम. ए., जै. सि. प्रभाकर

समाज व्यक्तियों का संगठित रूप है और संस्थाएं व्यष्टि एवं समष्टि का कार्य क्षेत्र। वस्तुतः सामाजिक संस्थाएं और समाज अन्योन्याश्रित हैं। यदि समाज में निरन्तर गतिशीलता एवं उत्थान आवश्यक है तो संस्थाओं का अस्तित्व नकारा नहीं जा सकता। इस दृष्टि से दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं। चूंकि व्यक्ति समाज की इकाई है और विकार तथा प्रमाद से ग्रस्त होना संभावित है समाज में व्याप्त शिथिलता अथवा किसी क्षेत्र की कमी दूर करने हेतु समाज द्वारा, समाज के लिए, समाज में ही किसी विशेष उद्देश्य से संस्था स्थापित होती हैं। संस्थाएं सीमित सम्प्रदाय, समाज के लिए समर्पित हो सकती है, तो उनका कार्य क्षेत्र राज्य, राष्ट्र एवं सम्पूर्ण विश्व भी हो सकता है। कतिपय संस्थाएं अपना उद्देश्य पूर्ण कर कुछ वर्षों में ही अपना अस्तित्व मिटा देती हैं तो कुछ सदियों तक भी अनवरत कार्यरत रहती हैं।

सामाजिक संस्थाएं विविध आयामी होती हैं तो एक उद्देश्य को लेकर भी संचालित की जाती हैं। इन सबका ध्येय यही रहता है कि समाज का कोई अंग किसी कारण न्यूनतम आवश्यकता से वंचित न रह जाय। परिस्थिति वश व्यक्ति निर्धनता, वेकारी, अस्वस्थता एवं असुरक्षा में जीवन यापन करता है तो सामाजिक संस्थाएं उसे यथा साध्य इन स्थितियों से निकाल आत्म सम्मान पूर्वक जीने का अवसर एवं आधार प्रदान करती हैं। शिक्षण, प्रशिक्षण, अर्थ सहयोग, स्वास्थ्य सेवा आदि दिशाओं में किये गये कार्य समाज को नवजीवन व प्रेरणा देते हैं।

व्यष्टि समष्टि नहीं होता परन्तु समष्टि व्यष्टि का ही संयुक्त रूप है अतः व्यक्ति समाज को प्रभावित करता है तथा समाज व्यक्ति की उपेक्षा नहीं कर सकता। समान विचार एवं मान्यता वाले व्यक्ति ही किसी संस्था की स्थापना करते हैं तथा समाज को इसकी अपेक्षा सदैव रहती है। विशाल भावना से देखने पर दोनों की सत्ता भिन्न नहीं है। दोनों में एकल एवं अद्वैत भाव होने से ही पारस्परिक सहयोग तथा समन्वय संभव है।

जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो व्यष्टि एवं समष्टि में भेद की दीवार नहीं। प्रभु महावीर ने 'एगे आया' अर्थात् स्वरूप दृष्टि से सब आत्माएं समान बताकर (समवायांग 1/1) दोनों के मध्य [illegible] दर्शाई है। जब सभी में एक ही आत्मप्रवाह का अस्तित्व है तो 'स्व' और 'पर' का भेद ही नहीं रह जाता। संसार में मानव भिन्न-भिन्न विचार वाले हैं, उनके कार्य पृथक हैं परन्तु तत्वदर्शी समस्त प्राणिजगत् को अपनी आत्मा के समान (ते आतओ पासइ सव्वलोए) (सूत्रकृतांग 1/12/18) ही देखता है। अन्य शब्दों में कहें तो

'स्व' का इतना विस्तार कर दिया जाए कि इसमें 'पर' का अस्तित्व ही न रहे। यही अहिंसा एवं अपरिग्रह है और यही सामाजिक चेतना का मूलाधार।

सामाजिक संस्थाओं के गठन व संचालन में श्रीमन्त वर्ग एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं की महती भूमिका होती है परन्तु एतदर्थ दिया गया अर्थ सहयोग अहं की पुष्टि न करे और सेवा स्वार्थ का रूप न ले तभी सार्थकता है। उदारता एवं बिना भेदभाव से की गई निःस्वार्थ सेवा ही सामाजिक संस्थाओं का प्राण है। 'अत्थो मूलं अणत्थाणं' को दृष्टिगत रखकर न अर्थ का व्यर्थ व्यय होना चाहिए और न इस पर एकाधिकार।

संस्थाओं द्वारा लाभान्वित व्यक्ति के प्रति किसी प्रकार का दया भाव भी अपेक्षित नहीं है क्योंकि जब 'एक' को किसी प्रकार का अभाव या दुःख है तो 'सब' का महत्व ही क्या? समाज तो समग्र रूप में शरीर है और कोई भी अंग या उपांग हीन या अस्वस्थ हो तो शरीर स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। इसी हेतु से भगवान् महावीर ने कहा है—

> जे एगं जाणइ, से सव्वं जाणइ।
> जे सव्वं जाणइ, से एगं जाणइ॥ (आचारांग 1/3/4)

अर्थात् जो एक को जानता है वह सबको जानता है और जो सबको जानता है वह एक को जानता है।
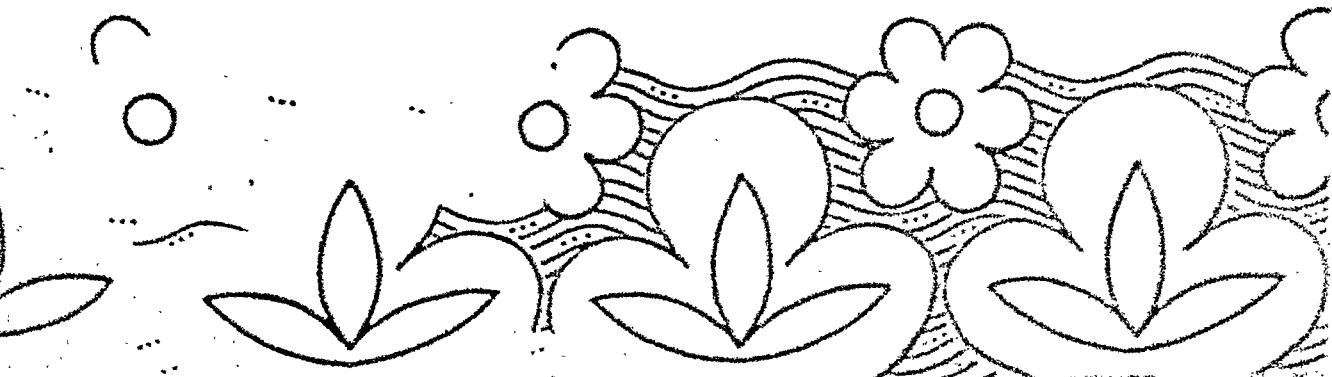
जब एक व सब का भेद ही मिट जाता है तो न कोई शासक है और न शासित। न कोई मालिक है और न आश्रित। वस्तुतः सभी एक इकाई—समाज के अंग हैं और पृथक्-पृथक् सत्ता भी।
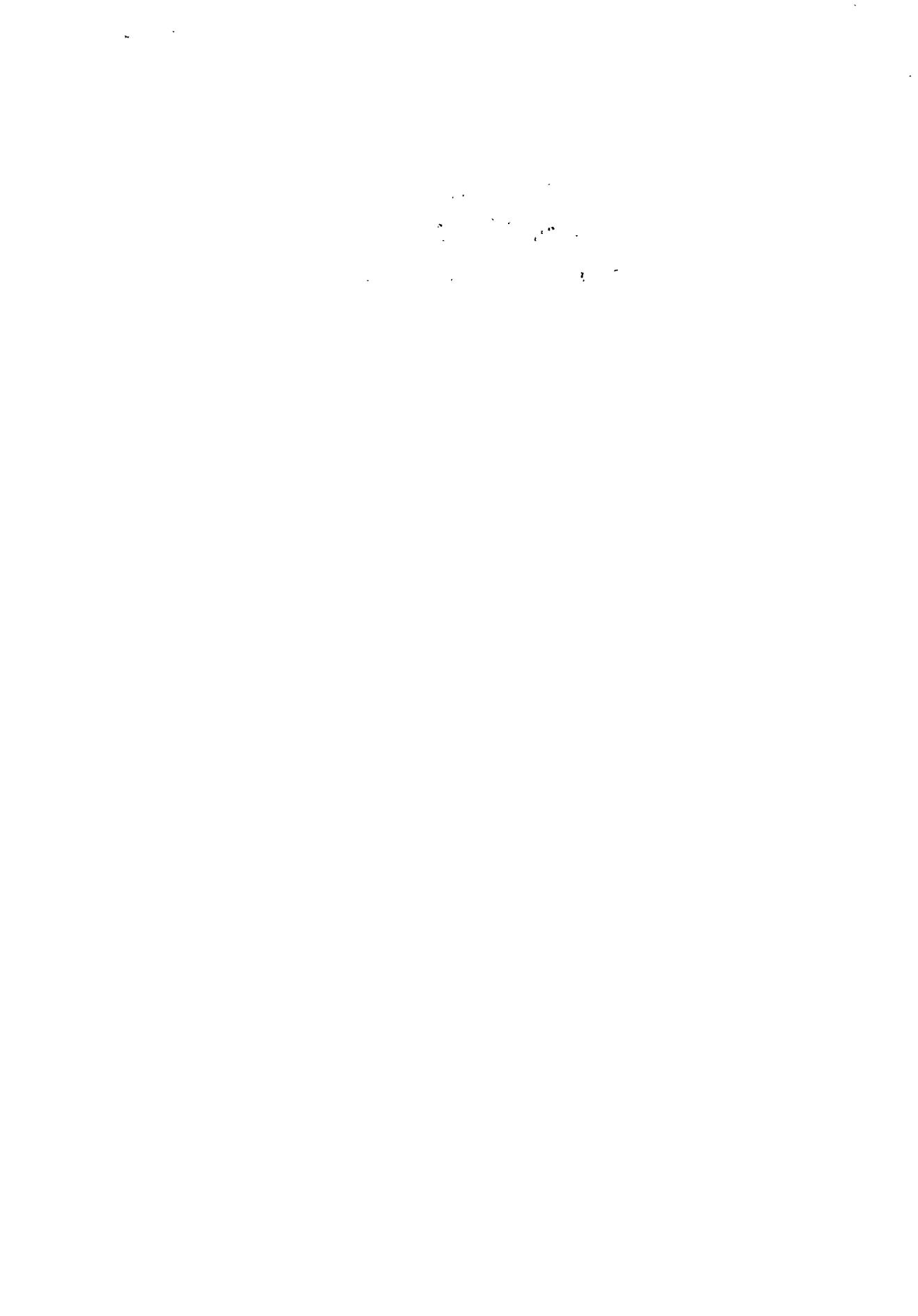
इन कसौटियों पर दृष्टि डाले तो श्री श्वे. साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था स्वनाम सार्थक सिद्ध होती है। गत 63 वर्षों का लेखा-जोखा स्पष्ट करता है कि संस्था ने जनोपयोगी कार्य कर बहुआयामी सेवा की है। संस्था ने साहित्य निर्माण का महत्वपूर्ण कार्य किया है तो स्वधर्मी सहयोग कार्य भी। समाज सेवा में यह अग्रणी रही है तो शिक्षा-प्रचार भी निरन्तर करती आई है। जैन पाठशालाओं को अनुदान दिया है तो भवनों की सुरक्षा भी की है। जीवदया हेतु कसाईखाना बन्द कराने के लिए नगरपालिका को राशि जमा कराई है तो महिलाओं को सिलाई-बुनाई प्रशिक्षण देकर स्वावलम्बी भी बनाया है। छात्रों को उच्च शिक्षा हेतु छात्रवृत्ति प्रदान कर सैकड़ों विद्यार्थियों को जीवन निर्माण में सहयोग देना भी इसकी मुख्य प्रवृत्ति रही है। संस्था अपने दायित्व को निभाती हुई एक कीर्तिमानीय मिशन बन गई है। फिर भी विशेषता यह रही है कि प्रदर्शन एवं दिखावे से दूर रहकर मूक सेवा ही इसका पाथेय रहा है। इसकी स्थापना व उन्नयन में जिन श्रीमन्तों, दानवीरों एवं कार्यकर्त्ताओं ने अपना योगदान दिया व दे रहे हैं वह किसी अपेक्षा से नहीं। ऐसी अनुकरणीय संस्थाएं समाज को नई दिशा देती रहे और समाज इनसे लाभान्वित होता रहे यह उपलब्धिमूलक है।

संस्था ने अपने सीमित साधनों से अतुलनीय सेवा कार्य किया है तथा अपने ध्रुव फंड को बनाये रखकर स्व-हित का भी संरक्षण किया है। निरन्तर गतिमान रहे यह संस्था व समाज के प्रति दायित्व निभाती हुई सफलता की मंजिलें तय कर सबके लिए प्रेरणादायक हो।

□

द्वारा— सेठिया जैन ग्रन्थालय,
बीकानेर – 334 001

सूक्तियां

सूक्तियां

□

संकलनकर्त्ता : श्री खेमचन्द सेठिया

यौवनं कुसुमोपमम् (गुरुड पुराण)

(यौवन पुष्प की तरह शीघ्र ही कुम्हला जाता है)

भयसीमा मृत्यु: (सुभाषित रत्न खंड मंजूषा)

(भय की अंतिम सीमा मृत्यु है)

जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु: (योग वशिष्ठ)

(जन्मधारी का मरण निश्चित है)

पर दु:खेनापि दु:खिता विरला —सुभाषित रत्न खंड मंजूषा

(पर दु:ख से दु:खी होने वाले पुरुष विरले हैं)

राजा वेश्या यमर चाग्नि (चाणक्य नीति)
स्तस्करो वाल याचकौ
पर दु:ख न जानन्ति
ह्यष्टयो ग्रामकण्टक:

(राजा, वेश्या, यम, अग्नि, चोर, बालक, याचक और ग्रामकण्टक ये आठों दूसरों का दु:ख नही जानते)

यस्य पुत्रो वशीभूतो
भार्या छन्दोनुगामिनी
विभवे यश्च सन्तुष्टस्तस्य
स्वर्ग इहैव हि

(जिस गृहस्थ के पुत्र अपने वश में हैं, स्त्री मन के अनुसार चलने वाली है और जो प्राप्त धन में सन्तुष्ट उस गृहस्थ के लिये यही स्वर्ग है)

अन्तर आत्मा ही ईश्वर है गांधीजी

हर्ष शोक जाके नहीं
वैरी मित्र समान
कहे नानक सुन रे मना
सो मूरति भगवान (गुरु नानक)

सुख देने में सुख है, सुख लेने में सुख नहीं है। सुख मांगने से सुख नहीं मिलता है। लोग सुख की भीख मांगते फिरते हैं, सुख के लिए भिखारी बने फिरते हैं, इसी कारण उन्हें सुख नहीं मिलता।—श्रीमद् जवाहराचार्य

चिऊंटी, हाथी के बराबर नहीं चल सकती तो क्या चलना छोड़ बैठती है? अगर तुम दूसरे के बराबर प्रगति नहीं कर सकते तो हर्ज नहीं, अपनी शक्ति के अनुसार ही चलो पर चलते चलो एक दिन मंजिल तय हो ही जायेगी। —श्रीमद् जवाहराचार्य

ईश्वर के रहस्य को तू तभी समझ सकेगा जब तू दिल साफ बना लेगा (जामी)

ईश्वर को देखना चाहते हो तो तुम्हें ईश्वर ही बनना पड़ेगा (बर्नार्डसा)

जानने की सार्थकता मानने में है और मानना तभी सफल बनता है जब उसके अनुसार किया जाये। विशिष्ट महत्व तो करने का है। आचरण ही जीवन को आगे बढ़ाता है—यह अवश्य है कि आचरण अन्धा या विकृत न हो। —आचार्य श्री नानेश

जो शख्स अल्लाहो-अल्लाहो चिल्लाता है, निश्चित जानो उसे ईश्वर नहीं मिलता। जो उसे पा लेता है वह चुप और शांत हो जाता है (रामकृष्ण)

तुम्हे जो चीज नापसन्द हो, वह दूसरों के लिये हरगिज मत करो (कांगफ्यूस्ती के धर्म का मूल सूत्र)

धर्म की बात में लिहाज नहीं किया जा सकता। (गांधीजी)

तुम बाहर के शत्रुओं को देखते हो, पर भीतर जो शत्रु छिपे बैठे हैं, उन्हें क्यों नहीं देखते? वही तो असली शत्रु है। —श्रीमद् जवाहराचार्य

भगवान जिस मन्दिर में रहते हैं वह मन्दिर हमारी ही देह है और उसमें रहा हुआ चिदानन्द आत्मा ही सनातन देव है। यह अज्ञान के कारण ही अपने स्वरूप को भूल चुका है। इसलिये इस अज्ञान को छोड़ो और 'मैं ही भगवान हूं' इस निष्ठा से अपनी आत्मा का ही समादर करो—भगवान का पता अवश्य लग जायगा।
आचार्य श्री गणेशीलालजी

आत्मा की पूर्ण स्वाधीनता का अर्थ है—धीरे-धीरे सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों एवं भौतिक जगत् से सम्बन्ध विच्छेद करना। अन्तिम श्रेणी में शरीर भी उसके लिए एक बेड़ी है, क्योंकि वह अन्य आत्माओं के साथ एकत्व प्राप्त कराने में बाधक है। पूर्ण स्वाधीनता की इच्छा रखने वाला विश्वहित के लिए अपनी देह का भी त्याग कर देता है। वह विश्व के जीवन को ही अपना जीवन मानता है सब के सुख दुःख में ही स्वयं के सुख-दुःख का अनुभव करता है, व्यापक चेतना में निज की चेतना को संजो देता है। एक शब्द में कहा जा सकता है कि वह अपने 'व्यष्टि को समष्टि में' विलीन कर देता है। वह आज की तरह अपने अधिकारों के लिये रोता नहीं, वह कार्य करना जानता है और कर्त्तव्यों के कठोर पथ पर कदम बढ़ाता हुआ चलता जाता है। जैसे कि गीता में भी कहा गया है—

'कर्मण्येवाधिकारस्ते, मा फलेषु कदाचन' आचार्य श्री गणेशीलालजी

धर्म की परीक्षा दुःख में ही होती है (गांधीजी)

अपना उल्लू सीधा करने के लिए शैतान भी धर्म के हवाले दे सकता है । (शेक्सपीयर)

पाप से घृणा करो पापी से नहीं (गांधीजी)

दूसरों को कष्ट से मुक्त करने के लिये स्वयं कष्ट सहिष्णु बनो और दूसरों के सुख में अपना सुख मानो। मानव धर्म की यह पहली सीढ़ी है । श्रीमद् जवाहराचार्य

साधक को साधना के क्षेत्र में निरन्तर चलते रहना चाहिये । कभी भी विराम का नहीं सोचना चाहिये । विराम का चिन्तन साधक के गिराव (पतन) का सूचक है । —आचार्य श्री नानेश

तीन व्यक्ति पश्चाताप करते हैं

1. बचपन में ज्ञानार्जन न करने वाले
2. जवानी में धनार्जन न करने वाले
3. बुढ़ापे में पुण्यार्जन न करने वाले

निःसन्देह मुझे अपने लोगों के लिये जिस बात का सबसे अधिक डर है, वह है विषय वासना और महत्वाकांक्षा । विषय वासना मनुष्य को सत्य से हटा देती है, और महत्वाकांक्षा में पड़ कर मनुष्य परलोक को भी भूल जाता है । (हजरत मुहम्मद)

पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिये शील, विश्व के लिये दया तथा जीव मात्र के लिये करुणा संजोने वाली महाप्रकृति का नाम नारी है । (रमण महर्षि)

कंटक पूर्ण शाखा को फूल सुन्दर बना देते हैं और गरीब से गरीब घर को लज्जावती युवती स्वर्ग बना देती है (गोल्डस्मिथ)

आज के आर्थिक युग में जिस प्रकार से मनुष्य का शोषण और दमन होता है, वह भी एक दर्दनाक परिस्थिति है । अपने साथी मनुष्य का दिल दुखाना, उसके प्रति कटु व्यवहार करना, कटुवचन कहना एवं मन से ईर्ष्या, द्वेष एवं प्रतिस्पर्धा के क्षेत्र में कइयों के प्रति बुरा चिन्तन करना, ये सब आज की ऐसी बुराइयां हैं। जिसकी ओर अहिंसा के साधक का ध्यान सबसे पहले जाना चाहिये । अहिंसा के जो ये मार्ग हैं, उन पर चलकर ही आत्मा का विकास भली-भांति साधा जा सकता है । —आचार्य श्री गणेशीलालजी

स्वयं का उत्तरदायित्व स्वयं पर है; दूसरों पर नहीं । दूसरे सहायक बन सकते हैं, लेकिन कब ? जबकि हम स्वयं अपने कर्तव्य-पालन में तत्पर हों । —आचार्य श्री नानेश

ब्रह्मचर्य जीवन का मूल है । इसी से जीवन की सारी रौनक है । आधुनिकता के चक्कर में आकर इसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये । इसकी उपेक्षा करना सारे जीवन की महत्ता को तिलांजलि देना है ।

—आचार्य श्री नानेश

आज के साम्यवाद, समाजवाद अपरिग्रह सिद्धान्त के ही रूपान्तर हैं । यदि अपरिग्रह का क्रियात्मक [illegible] भी अपने जीवन में उतारें तो वे अपने जीवन में तो आनन्द का अनुभव करेंगे ही—[illegible] दुनिया में एक नई रोशनी, एक नया आदर्श भी उपस्थित कर सकेंगे, क्योंकि अपरिग्रह का सिद्धान्त साम्यवाद [illegible]

समाजवाद के लक्ष्यों की तो पूर्ति कर ही देगा, साथ ही चरित्र एवं संयम की आधारशिला पर नागरिकों को खड़ा कर के उनकी बुराइयों को भी पनपने नहीं देगा ।

—आचार्य श्री गणेशीलालजी

अगर स्त्रियां न हों तो पुरुषों की बाल्य अवस्था असहाय एवं जवानी आनन्दविहीन हो जाय तथा बुढ़ापे में कोई आश्वासन देने वाला न हो ।

(जॉय)

जब मैं था तब हरि नहीं अब हरि है मैं नांय
प्रेम गली अति सांकरी तामें दो न समाय

(कबीर)

रहिमन धागा प्रेम का
मत तोड़हु तटकाय
टूटे से फिर ना मिले
मिलत गांठ पड़ जाय

(रहीम)

सज्जन ऐसा होत है, जैसे सूप सुहाय
सार सार को गहि रहे, थोथा देत उड़ाय

(कबीर)

मेरा तो यह विश्वास है कि सत्पुरुषों के कार्य का सच्चा आरम्भ उनके देहान्त के बाद होता है

(गांधीजी)

तुलसी उत्तम प्रकृति को
का करि सकत कुसंग
चन्दन विष व्यापै नहीं
लिपटे रहत भुंजग

(तुलसीदास)

जो ताको कांटा बुवै
ताहि बोव तू फूल
तोही फूल को फूल है
ताको है तिरसूल

(कबीर)

रक्त में फैले हुए रोग-कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए जैसे उसके सफेद कणों को पुष्ट किया जाता उसी तरह जो आत्माएँ अपने पौरुष व संयम की धवलता एकत्रित करती हैं, उस शक्ति द्वारा कर्मों की शक्ति विनष्ट कर देते हैं और ज्यों-ज्यों कर्मों की शक्ति नष्ट होती चली जाती है, आत्मा के वे गुण अधिकाधिक स्पष्ट से प्रकट होते चले जाते हैं । इस प्रकार कर्म-जाल को पूरी तरह काट देने पर आत्माएं सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, अ अजर-अमर हो जाती है ।

—आचार्य श्री गणेशीलाल

कर्मण्यता की भूमिका पर ही व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का उत्थान सम्पादित किया जा सकता है । वैभ विलास तो पतन के कारण बनते हैं । विलासी कायर होता है और अपनी हीन आसक्तियों के ऊपर नहीं सकता है ।

—आचार्य श्री गणेशीलाल

धीरे धीरे रे मनां
धीरे सब कुछ होय
माली सींचै सौ घड़ा
ऋतु आयां फल होय (कबीर)

सबै सहायक सबल के
कोउ न निर्बल सहाय
पवन जगावत आग को
दीप ही देव बुझाय

अधिकांश लोग ऊपरी भपका दिखाते हैं, धार्मिकता का प्रदर्शन करते हैं, लेकिन कौन कह सकता है कि वे सच्ची धार्मिकता का पालन कितना करते हैं ? जिसे धर्म का वास्तविक ज्ञान होगा और जो उसका पालन करेगा, उसे यह शरीर तो मिट्टी का दिखाई देगा। वह इस शरीर को सदा नाशवान समझेगा। धर्म को वह सजीव और अमर मानेगा।

श्रीमद् जवाहराचार्य

आत्मबल में अद्‌भुत शक्ति है। इस बल के सामने संसार का कोई भी बल नहीं टिक सकता। इसके विपरीत जिसमें आत्मबल का अभाव है, वह अन्यान्य बलों का अवलम्बन करके भी कृतकार्य नहीं हो सकता।

श्रीमद् जवाहराचार्य

थोथे कथन की अपेक्षा आचरणमय कथन सुधारकों का लक्ष्य होना चाहिये। जैन मुनि स्वयं कठोर साधना में तल्लीन रहते हैं, तदनुसार उपदेश देते हैं। अगर कथनी व करनी की समता न हो, तो उपदेश व सुधार के नाम पर समाज में दम्भ और विकृति ही अधिक फैलने की आशंका रहती है।

—आचार्य श्री गणेशीलालजी म. सा.

ईर्ष्या पतन का भयंकर रास्ता है। यह अमूल्य जीवन का धन है। यह वह जहर है जो कि जीवन को श्मशान तक शीघ्र ही पहुंचा देता है। ईर्ष्या एक जीवन को नहीं अनेक जीवन को नष्ट करती है।

—आचार्य श्री नानेश

मर जाऊ मांगू नहीं
अपने तन के काज
पर कारज के कारणे
मांगत मोहि न लाज (कबीर)

अरे सुधाकर जगत की
चिंता मत कर यार
मेरा मन ही जगत है
पहले इसे सुधार (कबीर)

संघ के प्रति कर्त्तव्य
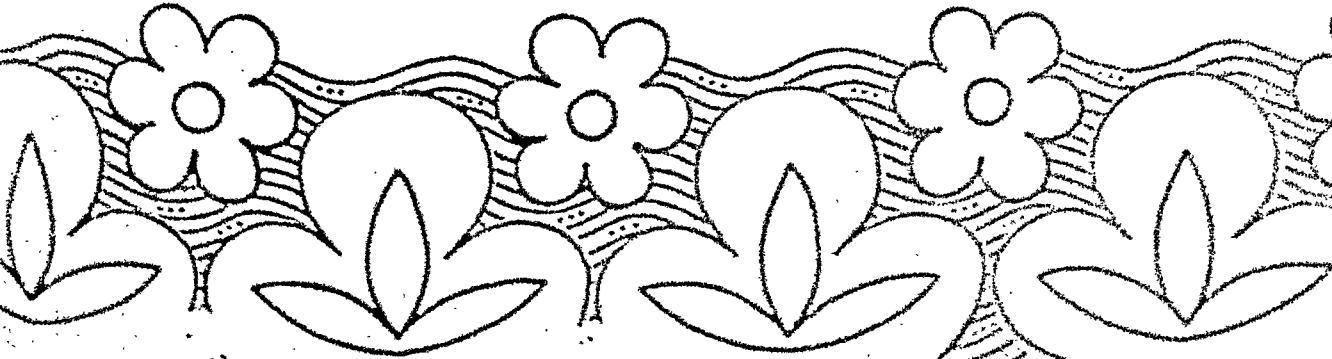
संघ महान् है। अगर संघ-शरीर के लिए सर्वस्व का भी त्याग करना पड़े तो भी वह त्याग कोई बड़ी चीज नहीं होनी चाहिए। संघ के संगठन के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करने में भी पश्चाताप नहीं होना चाहिए। संघ इतना महान है कि उसके संगठन के हेतु, आवश्यकता पड़ने पर पद और अहंकार का मोह न रखते हुए, इन सबका त्याग कर देना श्रेयस्कर है।

आज यदि संघ सुसंगठित हो जाए, तो शरीर की भांति प्रत्येक अवयव एक दूसरे का सहायक बन जाय, संघशक्ति का विकास हो, तथा धर्म एवं समाज की विशिष्ट उन्नति हो। संघ सेवा में पारस्परिक अनैक्य को कदापि बाधक नहीं बनाना चाहिए।

संघ की एकता के पवित्र कार्य में विघ्न डालना घोर पाप के बन्ध का कारण है। भगवान ने संघ में अनेकता उत्पन्न करना सब से बड़ा पाप बताया है। और सभी पाप इस पाप से छोटे है। संघ की शान्ति और एकता भंग करके अशान्ति और अनैक्य फैलाने वाला—संघ को छिन्न-भिन्न करने वाला प्रायश्चित का अधिकारी माना गया है। इससे यह स्पष्ट है कि संघ को छिन्न-भिन्न करना घोर पाप का कारण है। जो लोग अपना बड़प्पन कायम करने के लिए दुराग्रह करके संघ में विग्रह उत्पन्न करते हैं, वे घोर पाप करते हैं। अगर आप संघ की शान्ति और एकता के लिए सच्चे हृदय से प्रार्थना करेंगे तो आपका हृदय तो निष्पाप बनेगा ही, साथ ही संघ में अशान्ति फैलाने वालों के हृदय का पाप भी धुल जायगा। संघ में एकता होने पर संघ की सब बुराइयाँ नष्ट हो जाती है।

□

श्रीमद् जवाहराचार्य

जवाहर-विचारसार

अर्थ सहयोगी

हीरक जयंति के शुभ अवसर पर आर्थिक सहयोगियों की सूची

□

11,000/- श्रीमान् अबीरचन्द जी चन्दनमल जी सुखाणी, कलकत्ता

11,000/- श्रीमान् जेसराज जी भंवरलालजी वैद, कलकत्ता

11,001/- श्रीमती छोटा देवी सेठिया (धर्मपत्नी श्री केशरीचन्द जी सेठिया सुपुत्र कुन्दनमल जी सेठिया, बीकानेर) पुस्तक प्रकाशन के लिए

5,111/- श्रीमती तारादेवी बांठिया धर्मपत्नी श्री चम्पालाल जी बांठिया, भीनासर

5,101/- श्रीमान् दीपचन्द जी बुलाकीचन्द जी शान्तिलाल जी किशनलाल जी डागा, बीकानेर

5,101/- श्रीमती रतन देवी डागा, बीकानेर

5,101/- पीरदान जी पारख एण्ड ब्रदर्स

5,100/- श्रीमान् चम्पालाल जी रामलाल जी डागा, बीकानेर

5,100/- मै. जे. जी. स्टेट्स एण्ड इन्वेस्टमेन्ट, बीकानेर

5,001/- श्रीमान् दिखरचन्द जी मिन्नी, कलकत्ता

5,001/- श्रीमान् छगनमल जी वैद, कलकत्ता

5,001/- श्रीमान् जुगराज जी उमेश जी मुकीम, कलकत्ता

5,001/- श्रीमान् कानमल जी जयचन्दलाल जी मुकीम, कलकत्ता

5,001/- श्रीमान् भंवरलाल जी कर्नावट, कलकत्ता

5,001/- श्रीमान् जयचन्दलाल जी मिन्नी, कलकत्ता

5,001/- श्रीमान् सुन्दरलाल जी सम्पतलाल जी तातेड़, बीकानेर

5,001/- श्रीमान् चाँदमल जी, राजमल जी पारसमल जी बरड़िया, कलकत्ता

5,000/- श्रीमान् अनोपचन्द जी अबीरचन्द जी सेठिया, कलकत्ता

3,101/- श्रीमान् उत्तमचन्द जी माणकचन्द जी लोढ़ा, बीकानेर

3,101/- श्रीमती जीना देवी (धर्मपत्नी श्री मोजीराम जी डागा, बीकानेर)

3,100/- श्रीमान् आसकरण जी चतुर्भुज जी शाह बोथरा, तेजपुर

3,100/- श्रीमान् टीकमचन्द जी पुनमचन्द जी सेठिया, तेजपुर

2,550/- माणकचन्द प्रदीपकुमार रामपुरिया चैरिटेबल ट्रस्ट, बीकानेर

2,550/- श्रीमान् जयचन्दलाल जी शरदकुमार जी रामपुरिया, बीकानेर

2,500/- गुप्तदानी

2,101/- श्रीमान् भंवरलाल जी नथमल जी तातेड़, करीमगंज

2,101/- श्रीमान् नेमचन्द जी माणकचन्द जी सेठिया, बीकानेर

2,101/- श्रीमान् धनराज जी निर्मलकुमार जी कोठारी, बीकानेर

2,101/- श्रीमान् भंवरलाल जी रामचन्द जी श्री श्रीमाल, बीकानेर

2,101/- [illegible] सेठिया चैरिटेबल ट्रस्ट, बीकानेर

2,100/- मैसर्स बोथरा [illegible], [illegible]

2,100/- श्रीमान् भंवरलाल जी [illegible] जी [illegible] मुम्बई (नागौर वाला)

2,001/- महाराव श्री गुमानसिंह जी वैद, बीकानेर
2,000/- श्रीमती मगन कंवर, बीकानेर
2,000/- श्रीमान् पूर्णमल जी कांकरिया, कलकत्ता
2,000/- श्रीमती उमराव देवी कांकरिया, कलकत्ता
2,000/- श्रीमती केसर देवी कांकरिया, कलकत्ता
2,000/- मैसर्स फुसराज पूरणमल, कलकत्ता
2,000/- मैसर्स प्रोडुगुस एण्ड फाइवर्स, कलकत्ता
1,500/- श्रीमती जतन देवी सेठिया, बीकानेर
1,500/- श्रीमान् हेमचन्द जी सेठिया, बीकानेर
1,111/- श्रीमान् भंवरलालजी भावक, बीकानेर
1,101/- श्रीमान् रतनलाल जी करनीदान जी पटवा, भीनासर
1,101/- श्रीमान् मोहनलाल जी तातेड़, तेजपुर
1,101/- श्रीमान् इन्द्रचन्द जी तातेड़, गोहाटी
1,101/- श्रीमान् प्रकाशचन्द जी तातेड़, गोहाटी
1,101/- श्रीमान् लिखमीचन्द जी भंवरलाल जी शाह बोथरा, बीकानेर
1,101/- श्रीमान् फतेहचन्द जी कस्तुरचन्द जी बांठिया, बीकानेर
1,101/- श्रीमान् विजयचन्द जी कमलचन्द जी पारख, बीकानेर
1,100/- श्रीमान् नवलचन्द जी मोतीलाल जी, बीकानेर
1,100/- श्रीमान् धनपतसिंह जी ढढ्ढा, तेजपुर
1,101/- श्री घेवरचन्द जी गोलछा, नोखा मण्डी
1,001/- मैसर्स मिदनापुर कॉमर्शियल कम्पनी, कलकत्ता
1,001/- श्रीमान् भंवरलाल जी बोथरा, कलकत्ता
1,001/- श्रीमान् किशनलाल जी बोथरा, कलकत्ता
1,001/- श्रीमान् विजयसिंह जी बोथरा, कलकत्ता
1,001/- श्रीमान् सुन्दरलाल जी बोथरा, कलकत्ता
1,001/- श्री जय बोथरा, कलकत्ता
1,000/- मैसर्स जैन इन्डस्ट्रीज, बीकानेर
1,000/- श्रीमान् भंवरलाल जी ढढ्ढा, तेजपुर
1,000/- श्रीमान् दिलीपकुमार जी कोठारी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् हेमन्तकुमार जी कोठारी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् कमलकुमार जी कोठारी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् प्रदीपकुमार जी कोठारी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् भंवरलाल जी कोठारी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् डूंगरमल जी दस्साणी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् भंवरलाल जी दस्साणी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् प्रकाशचन्द जी दस्साणी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् प्रदीपकुमार जी दस्साणी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमती रतनदेवी दस्साणी, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् नथमल जी भन्साली, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् रिखबदास जी भन्साली, कलकत्ता
1,000/- श्रीमान् मुकेशकुमार जी सेठिया, मद्रास
700/- श्रीमती चन्दादेवी, बीकानेर
700/- श्रीमती इन्द्रादेवी, बीकानेर
700/- श्रीमती सरितादेवी, बीकानेर
501/- श्रीमान् भंवरलाल जी सेठिया, बीकानेर
501/- श्रीमान् भीखमचन्द जी बच्छावत, बीकानेर
501/- श्रीमान् प्रसन्नचन्द जी सेठिया, बीकानेर
501/- श्रीमान् रिखबदास जी लिखमीचन्द जी सोनावत, बीकानेर
501/- श्रीमान् चम्पालाल जी लोढ़ा, बीकानेर
501/- श्रीमती घुड़ीदेवी धर्मपत्नी गणेशमल जी बोथरा, गंगाशहर
5,01/- इन्द्रचन्द जी जतनलाल जी डागा, बीकानेर
500/- श्रीमान् चन्द्रसिंह जी वैद, जयपुर
500/- श्रीमान् यशवर्द्धन जी बांठिया
500/- श्रीमान् राजेन्द्रकुमार जी भन्साली, कलकत्ता
500/- श्रीमान् राजेशकुमार जी भन्साली, कलकत्ता
500/- श्रीमती भंवरीदेवी भन्साली, कलकत्ता
500/- श्रीमती ज्योत्सना भन्साली, कलकत्ता
500/- श्रीमान् गौरवकुमार जी भन्साली, कलकत्ता
500/- श्रीमान् अशोककुमार जी भन्साली, कलकत्ता

5,001/- मैसर्स कन्हैयालाल शान्तिलाल, कलकत्ता
5,001/- श्रीमान् सरदारमलजी कांकरिया, कलकत्ता
5,001/- श्रीमान् फतेहचन्दजी नेमीचन्दजी कर्नावट, कलकत्ता

विशेष आर्थिक सहयोग
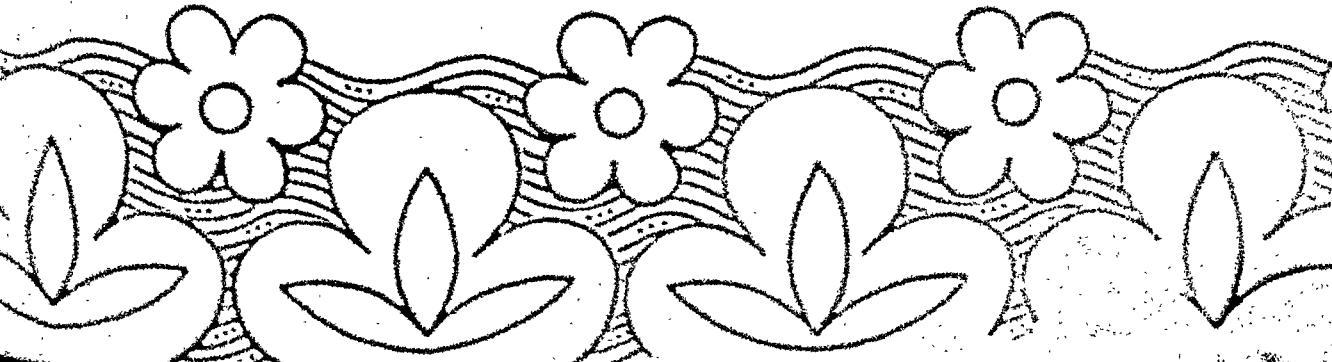
हीरक जयन्ती समारोह के समय नीचे लिखे महानुभावों ने संस्था को आर्थिक सहयोग प्रदान करने की घोषणा की—

10,000/- श्रीमान् जेसराज जी भंवरलालजी वैद,कलकत्ता
5,001/- श्रीमान् गणपत राज जी बोहरा, पिपलिया कलां
5,001/- श्रीमान् गुमानमल जी चौरड़िया, जयपुर
5,001/- श्रीमान् दीपचन्द जी भूरा, देशनोक
2,501/- श्रीमान् पीरदान जी पारख एण्ड ब्रादर्स
1,101/- श्रीमान् तोलाराम जी डोसी, देशनोक
1,001/- श्रीमान् फुसराज जी दीपचन्द जी बोथरा, उदासर
1,001/- श्रीमती रूक्मणी देवी दस्साणी धर्मपत्नी श्री सतीदास जी दस्साणी, बीकानेर
501/- M/s Jaipur Wax Products, Jaipur
500/- उमराव मल जी बम्ब, टोंक

संस्था इनके प्रति आभारी हैं।

□

विज्ञापन
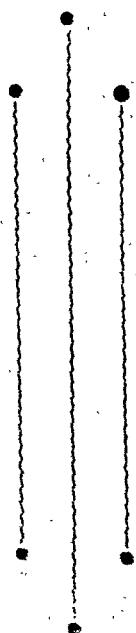
धर्म के फल की कामना करने से ही धर्म का फल मिलेगा, अन्यथा नहीं, ऐसा समझना भूल है। कामना करने से तो धर्म का फल तुच्छ हो जाता है और कामना न करने से अनन्त गुणा फल मिलता है।

—आचार्य श्री जवाहर
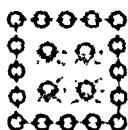
सच्चा धर्म वही है जो अन्तरतम से उद्भूत होता है। जिस बाह्य क्रिया के साथ मन का मेल नहीं है, जो केवल परम्परा का पालन करने के लिए की जाती है या प्रतिष्ठा के मोह से की जाती है, वह ठीक फल नहीं दे सकती।

—आचार्य श्री जवाहर

जब तक हृदय में पदार्थों का, मान बड़ाई का, आदर-सत्कार का, नीरोगता का, शरीर के आराम का महत्व बैठा हुआ है, तब तक मनुष्य परमात्म प्राप्ति का निश्चय नहीं कर सकता।

—स्वामी रामसुखदास जी महाराज

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

आत्मा का जन्म नहीं होता, आत्मा का मरण भी नहीं होता, आत्मा तो स्वयं में अजर-अमर है। जन्म मरण तो शरीर का होता है। तत्व दृष्टि मे आत्मा का तथा देह का जन्म मरण के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

—श्रीमद् विजय धर्म सूरीश्वर जी महाराज

मोहिनी देवी बोथरा
कमल चन्द बोथरा
विमल चन्द बोथरा
राजेन्द्र बोथरा
विनोद बोथरा
मुकाम तेजपुर, कलकत्ता

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

आत्मा का जन्म नहीं होता, आत्मा का मरण भी नहीं होता, आत्मा तो स्वयं में अजर-अमर है। जन्म मरण तो शरीर का होता है। तत्व दृष्टि से आत्मा का तथा देह का जन्म मरण के साथ कोई भी सम्बन्ध नहीं है।

—श्रीमद् विजय धर्म सूरीश्वर जी महाराज

मोहिनी देवी बोथरा
कमल चन्द बोथरा
विमल चन्द बोथरा
राजेन्द्र बोथरा
विनोद बोथरा
[illegible]

अगर अहिंसा हमारे जीवन का धर्म है तो भविष्य स्त्री के हाथ में है। दुनिया शान्ति के अमृत की प्यासी है। उसे शान्ति की कला सिखाने का काम स्त्री का है।

—महात्मा गांधी

पमग्य कम्ममाहंसु, अप्पमायं तहावरं ।
तब्भावादेसओ वावि, बालं पण्डियमेव वा ।। सूत्र कृतांग 1/8/3

तीर्थंकर देव ने प्रमाद को कर्म कहा है और अप्रमाद को कर्म का अभाव बतलाया है। प्रमाद के होने और न होने से ही मनुष्य क्रमशः मूर्ख और पण्डित कहलाता है।
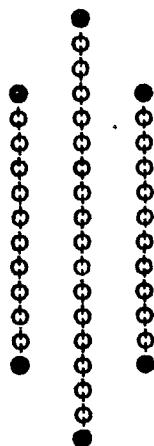
कुसग्गे जह ओसबिन्दुए, थोवं चिट्ठइ लंबमाणए ।
एवं मणुयाण जीवियं, समयं गोयम ! पमायए ।। उत्तरा 10/2

जैसे कुशा (घास) की नोक पर हिलती हुई ओस की बूंद बहुत थोड़े समय के लिए टिक पाती है, ठीक ऐसा ही मनुष्य का जीवन भी क्षण भंगुर है । अतएव है गौतम ! क्षण भर के लिए भी प्रमाद मत कर ।

इह भविए वि नाणे, परभविए वि नाणे,
तदुभय भविए वि नाणे। भगवती सूत्र 1/1

ज्ञान का प्रकाश इस जन्म में रहता है, पर जन्म में रहता है, और कभी दोनों जन्मों में भी रहता है। —भगवती सूत्र 1/1

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ —गीता–2/47

तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में नहीं । इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत हो तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो ।

With best compliments from

हार्दिक शुभकामनाओं के साथ

जहा दड्ढाण वीयाणं, ण जायंति पुण अंकुरा।
कम्मवीएसु दड्ढेसु, न जायंति भवंकुरा ।। दशा. 5/15

बीज के जल जाने पर उससे नवीन अंकुर प्रस्फुटित नहीं हो सकता, वैसे ही कर्मरूपी बीजों के दग्ध हो जाने पर उसमें से जन्म मरण रूप अंकुर प्रस्फुटित नहीं हो सकता।

समता-दर्शन की मार्मिकता इसी में है कि जो जैसा है या जो जहाँ है, उसको उसके यथार्थ रूप में देखने की चेष्टा की जाए एवं उस आधार पर समता-दर्शन की प्रतिष्ठा के लिए समुचित प्रयास किए जाये ।

—आचार्य श्री नानेश

With best compliments from

MECO INSTRUMENTS PVT. LTD.

Bharat indl. Estate, T. J. Road. Sewree, BOMBAY-400 015

Telephone : 4137423/4132435/4137253/4140786
Telex : 011-71001 MECO IN
Fax : 91-22-4130747

Executive Head :
Premchand Goliya

Products on Display :
Electrical & electronic testing & measuring instruments.

Brief History :
Meco Instruments Pvt. Ltd. was established in the year 1962 and manufacture complete range of electronic & electrical measuring & testing instruments. The range of instruments include ammeters, voltmeters, wattmeters, varmeters. P.F. meters, frequency meters tong tester, insultation tester, ohmmeter, phase sequence ind cators, cell tester, ammeter shonts and in current transformers. The company also manufactures digital multimeters 3 1/2 and 4 1/2 digit in seven different models full range of digital 3 1/2 and 4 1/2 digit LCD/LED ammete and voltmeters, 3 digit and 5 digit frequency counter, digital insulation tester, digital tong tester etc. etc. Company's products are presently exported to U.K., West Germany, U.A.E., Saudi Arabia, Kuwait, Qatar, Oman, Nigeria, Ethiopia, Kenya, Tanzania, Singapore, Malaysia, Hong Kong, Thailand etc.

अप्पणो णामं एगे वज्जं पासइ, णो परस्स ।
परस्स णामं एगे वज्जं पासइ, णो अप्पणो ।
एगे अप्पणो वज्जं पासइ, परस्स वि ।
एगे णो अप्पणो वज्जं पासइ, णो परस्स । —स्थानांग 4/1

कुछ व्यक्ति अपना दोष देखते हैं, दूसरों का नहीं ।
कुछ दूसरों का दोष देखते हैं, अपना नहीं ।
कुछ अपना दोष भी देखते हैं, दूसरों का भी ।
कुछ न अपना दोष देखते हैं, न दूसरों का ।

दन्तसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जणं। —उत्तरा. 13/28

अस्तेय व्रत का साधक विना किसी की अनुमति के, और तो क्या, दाँत साफ करने के लिए एक तिनका भी नहीं लेता।

समाहिकारए णं तमेव समाहिं पडिलब्भई । —भग. सूत्र-7/1

जो दूसरों के दुःख एवं कल्याण का प्रयत्न करता है । वह स्वयं भी सुख एवं कल्याण को प्राप्त करता है ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।। —गीता-4/7

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं—'हे भारत ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब ही मैं अपने रूप को रचता हूँ अर्थात् साकार रूप से लोगों के सम्मुख प्रकट होता हूँ ।'

सत्वपाणा न हीलियत्वा, न निंदियत्वा। —प्रश्न. 2/1
विश्व के किसी भी प्राणी की न अवहेलना करनी चाहिए और न निन्दा।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

कान्तिलाल सुशीलकुमार गुलगुलिया
देशनोक, वीकानेर (राज.)

प्रतिष्ठान :

मैसर्स कान्ति एन्टरप्राईजेज
67, अप्पाची नगर, पहली गली तिरूपुर-7 (तमिलनाडू)

मैसर्स तिरूपुर निटिंग मिल्स
अप्पाची नगर, पहली गली एक्सटेन्टसन
तिरूपुर-7 (तमिलनाडू)

मैसर्स कान्ति ब्लीचर्स
3/651 कुपान्डमपालयम वीरापान्डी पोस्ट
तिरूपुर-5 (तमिलनाडू)

मैसर्स सुशील एन्टरप्राईजेज
22, एम. पी. नगर, तिरूपुर-7 (तमिलनाडू)

णाणेणज्झाण सिज्झी, झाणदोसव्व कम्मणिज्जरणं ।
णिज्जरण फलं मोक्खं, णाणब्भासं तदोकुज्जा ।। —भगवान महावीर

ज्ञान से ध्यान सिद्धि होती है । ध्यान से सब कर्मों की निर्जरा होती है । निर्जरा का फल मोक्ष है, अतः मनुष्य को निरन्तर ज्ञान का अभ्यास करते रहना चाहिए ।

अप्पाणमेव जुज्झाहि, किं ते जुज्झेण बज्झाओ ।
अप्पाणमेव अप्पाणं, जइत्ता सुहमेहए ।। —भगवान महावीर

बाहरी युद्धों से क्या लेना देना है । स्वयं अपने से ही युद्ध करो । अपने द्वारा अपने को जीतकर ही सच्चे सुख की उपलब्धि होती है ।

सुवण्ण रुप्पस्स उ पव्वया भवे, सिया हु कैलास समा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहिं किंचि, इच्छाहु आगास समा अणंतिया ॥ —भगवान महावीर

चाहे कैलाश पर्वत के समान चाँदी और सोने के असंख्यात पर्वत मिल जाएं तो भी लोभी मनुष्य को उन से सन्तोष नहीं होता क्योंकि इच्छा आकाश के समान अनन्त है। अर्थात् इच्छा के दमन में ही सुख है।

धन से पुस्तकें खरीदी जा सकती है, ज्ञान नहीं ।
औषधियाँ मिल सकती हैं, स्वास्थ्य नहीं ।
सेवक जुटाए जा सकते हैं, सेवा नहीं ।
मन्दिरों का निर्माण हो सकता हैं, भक्ति नहीं । —आचार्य श्री तुलसी

हीरक जयन्ती वर्ष के शुभ अवसर पर शुभकामनाएं

शान्तिलाल ओमप्रकाश

134, जमनालाल बजाज स्ट्रीट, कलकत्ता-7

नाणेण जाणइ भावे, दंसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाई, तवेण परि सुज्झई ।। —उत्तरा. 28/35

जीव ज्ञान से पदार्थों को जानता है, दर्शन से श्रद्धा करता है चारित्र से आश्रव का निरोध करता है और तप से कर्मों को झाड़कर दूर कर देता है ।

हीरक जयन्ती वर्ष के शुभ अवसर पर शुभकामनाएं

विजय सिरोहिया

16, बोन फिल्ड लेन, कलकत्ता-1

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

— श्रीमद्भगवद् गीता — श्लोक 2/20

यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है; क्योंकि यह अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है; शरीर के मारे जाने पर भी यह नहीं मारा जाता ।

क्रान्ति न हठ है, न दुराग्रह है और न रक्तपात है। नये सामाजिक मूल्यों की रचना का नाम क्रान्ति है। समता साधक जब क्रान्ति का बीड़ा उठाता है तो उसमें सादगी, सरलता एवं विनम्रता की मात्रा भी बढ़ जाती है।

आचार्य श्री नानेश

दृष्टि जब सम होती है अर्थात् उसमें भेद नहीं होता, विकार नहीं होता और अपेक्षा नहीं होती, तब उसकी नजर में जो आता है, वह न तो राग या द्वेष से कलुषित होता है और न स्वार्थभाव से दूषित।

—आचार्य श्री नानेश

पुरिसा ! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमुच्चसि । —आचा. 1/3/3

मानव ! अपने आपको ही निग्रह कर, ऐसे के निग्रह से ही तू दुःख से मुक्त हो सकता है ।

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ श्रीमद् भगवद्गीता 5:12

कर्मयोगी कर्मों के फल का त्याग करके भगवत्प्राप्ति रूप शान्ति को प्राप्त होता है और सकामपुरुष कामना की प्रेरणा से फल में आसक्त होकर बंधता है ।

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

स्वराज का अर्थ केवल आर्थिक कुरीतियों से मुक्त होना ही नहीं है। जातीय, वर्ग, सम्प्रदाय, अधिकार का अपहरण, अनाचरण—ये सब स्वराज के अंग हैं। आज हम इनसे मुक्त हों, वही हमारा ध्येय है।

—आचार्य श्री तुलसी

अलद्धुयं नो परिदेवएज्जा,
लद्धुं न विकत्थयई स पुज्जो ।
जो लाभ न होने पर खिन्न नहीं होता है, और लाभ होने पर अपनी बड़ाई नहीं हांकता है, वही पूज्य है ।

With best compliments from

सौ. कां. मीना के शुभ विवाह के उपलक्ष्य में
श्री रोडमलजी बालचन्दजी रांका तंडियार पेठ वालों की
तरफ से संस्था की हीरक जयन्ती पर भेंट

सहकार के अभाव में जीवन अस्थिर, असुरक्षित, संघर्षमय और अशांतिपूर्ण रहता है। समाज में जितनी मात्रा में सहकार की वृद्धि होगी, उतनी ही मात्रा में सुख की वृद्धि होगी।

— [illegible]

जहां अस्साविणि णावं, जाइअंधो दुरूहिया ।
इच्छइ पारमागंतुं, अंतरा य विसीयई ।। —सूत्रकृतांग—1/1/2/31

अज्ञानी साधक उस जन्मांध व्यक्ति के समान है, जो सछिद्र नौका पर नदी किनारे पहुंचना तो चाहता है, किन्तु किनारा आने से पहले ही वीच प्रवाह में डूब जाता है ।

कोहो पीइं पणासेइ, माणो विणयनासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्वविणासणो॥ —दशवै. ८.३८

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का, माया मैत्री का और लोभ सभी सद्गुणों का विनाश कर डालता है।

इच्छा हु आगाससमा अणंतिया। —उत्तरा. 9/48
इच्छाएं आकाश के समान अनन्त हैं।

With best compliments from

दुल्लहे खलु माणुसे भवे। —उत्तरा. 10/4
मनुष्य जन्म निश्चय ही बड़ा दुर्लभ है।

With best compliments from

इच्छा हु आगाससमा अणंतिया । —उत्तरा. 9/48
इच्छाएं आकाश के समान अनन्त हैं ।

With best compliments from

BHIKAMCHAND BALCHAND

35, Armenian Street, CALCUTTA-1

Phone : 384608/385091
Cable : MAFTEXCOT

दुल्लहे खलु माणुसे भवे । —उत्तरा. 10/4
मनुष्य जन्म निश्चय ही बड़ा दुर्लभ है ।

With best compliments from

MIHIR TEXTILES LTD. ★ MATULYA MILLS LTD.

Dealers, Sungrace Fabrics

BHANWARLAL DALCHAND

72, Jamunalal Bajaj Street
(Ganesh Bhagat Katra)
CALCUTTA-700 007

अह पंचहि ठाणेहि, जेहि सिम्खा न लब्भई ।
थंभा, कोहा, पमाएणं, रोगेणालस्सएण वा ।। —उत्तरा. 11/3

अहंकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य—इन पांच कारणों से व्यक्ति शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता ।

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिए।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ।। —उत्तरा. 9/34

भयंकर युद्ध में हजारों-हजार दुर्दान्त शत्रुओं को जीतने की अपेक्षा, अपने आप को जीत लेना ही सबसे बड़ी विजय है।

उपजै-विनसै सकळ पदारथ वै अभिभूत भाव है जाण ।
समझ पुरुष अधिदेव अरजुना हूँ देहाँ अधियज्ञ सुजाण ।। —गीता भीमानन्दी 8/4

जीवन को दिव्य एवं भव्य बनाना मानव का प्रथम कर्त्तव्य है। उच्च आदर्श के अनुरूप विचार एवं आचार नितान्त आवश्यक है।

मानसिक पवित्र भूमिका पर ही जीवन की दिव्य एवं भव्य फसल अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित एवं फलित होती है। आन्तरिक धरातल पर जैसी भी जीवन की अवस्था बनाना चाहें, बन सकती है, इसमें कोई संदेह नहीं।

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जंतुणों ।
माणुसत्तं सुई सद्धा, संजमम्मि य वीरियं ।। —उत्तरा. 3/1

संसार में चार बातें प्राणी को बड़ी दुर्लभ है—मनुष्य जन्म, धर्म का श्रवण, दृढ़ श्रद्धा और संयम में प्रवृत्ति अर्थात् धर्म का आचरण ।
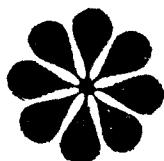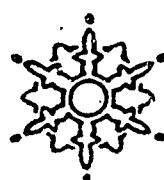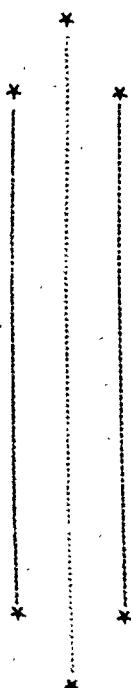
राग ऊपर से मीठा परन्तु अन्दर से आत्मा को खा-खा कर खोखला कर देने वाला महान शत्रु हैं। ऐसे इस राग के पाश में से दूर रहना इसी में आत्मा का कल्याण हैं।

—श्रीमद् विजयधर्मसूरीश्वरजी

जो सहस्सं सहस्साणं, संगामे दुज्जए जिणे ।
एगं जिणेज्ज अप्पाणं, एस से परमो जओ ।। —उत्तरा. 20/48

जो पुरुष दुर्जय-संग्राम में दस लाख योद्धाओं पर विजय प्राप्त करे, उसकी अपेक्षा वह अपने आपको जीतता है, यह उसकी परम विजय है ।

परिस्थितियां सबके सामने होती है, पुरुषार्थी व्यक्ति उन्हें पार कर आगे बढ़ जा
और निष्क्रिय व्यक्ति उनके सामने घुटने टेक देता है। —आचार्य श्री तु

हीरक जयन्ती वर्ष के शुभ अवसर पर शुभकामनाएं

गजराज जैन
केपीटल ट्रेडर्स
तेजपुर

सफलता के अमोघ अस्त्र हैं—
श्रम और साधना। —आचार्य श्री तु

With best compliments from

ROOP MOTORS
P.O. TEZPUR, (ASSAM)